पदच्छेद–अन्वय

और

सरल भाषाटीका सहित

असंख्यैः प्राचीनैर्जननि जननैः कर्मविलया-
द्गते जन्मन्यन्तं गुरुवपुषमासाद्य गिरिशम् ।
अवाप्याज्ञां शैवीं क्रमतनु पि त्वां विदितवान्
नयेयं त्वत्पूजास्तुतिविरचनेनैव दिवसान् ॥

संपादक तथा प्रकाशक

श्री राम शैव (त्रिक) आश्रम

फतेहकदल–श्रीनगर

॥ सर्वाधिकार सुरक्षित हैं ॥

सं० १९६२

प्रथम संस्करण : १५००   मूल्य दो रुपये

...त होता है, पांच
...का संग्रह ह ... शक्ति की स्तुति की गई है। कश्मीर प्राचीन काल से ही शिव शक्ति के अभेद का उपासक रहा है और शाक्त, तान्त्रिक, शैव तथा त्रिकादिमतों का केन्द्र रहा है। पंचस्तवी यहां का सर्वप्रिय और सर्वोत्तम स्तोत्र-ग्रन्थ माना गया है। यहां के नर नारी, बूढे, युवक तथा बच्चे इसके मधुर श्लोकों का गान करके जहां मनोविनोद प्राप्त करते हैं, वहां इसके गूढार्थविमर्शन से आध्यात्मिक शान्ति भी पाते हैं। हर पर्व पर, हर देवस्थान पर सायं प्रात: इसके श्लोकों का गायन किया जाता है।

यह ग्रन्थ बहुत पुराना बताया जाता है और कुछ विद्वानों के अनुमान के अनुसार इसे श्री धर्माचार्य की कृति माना गया है।

यह ग्रन्थ आध्यात्मिक रहस्यों और मर्मों से पूर्ण है और गुरु परम्परा तथा मुखाम्नाय से ही इसका प्रचार गुरुजन शिष्यमण्डल में करते आये हैं। संभवत: इसी कारण आजतक किसी आचार्य ने इसकी टीका नहीं लिखी।

महामाहेश्वराचार्य श्री स्वामी राम जी महाराज जिन्हें आधुनिक युग का शिवावतार मानना चाहिये ने श्री राम शैव (त्रिक) आश्रम का संस्थापन करके लुप्तप्राय त्रिकमत को पुनर्जीवित किया। उनके दिव्य दर्शनों तथा विद्वत्ता से आकर्षित होकर जनता उनके दर्शनों को आती और इनके यौगिक चमत्कारों से हर्षमग्न हो जाती।

प्रकार स...
सम्बन्ध दिलाते।...

उनके सच्छिष्य श्री स्वामी गोविन्द कौल जी, जिन्हें गुरुदेव ने प्रत्यभिज्ञाकार की पदवी दी थी, ने इस आश्रम का कार्य-क्रम चलाने का भार अपने कन्धों पर लिया और ठीक अपने गुरुदेव के पथ पर चलते हुए इस शास्त्र का प्रचार और गुरुदेव की कार्यप्रणाली को आगे बढाया।

यह पुस्तिका उन्हीं विचारों तथा विमर्शों का संकलन है और लोकहितार्थ इसे सर्वसाधारण जनता के लिए प्रस्तुत किया जाता है। आशा है कि जनता हमारे इस उद्योग को सफल बना कर हमारा उत्साह बढायेंगे।

इस तुच्छ कृति को हम गुरुजनों की देन समझ कर उनके ही पूज्य चरणों की भेंट करते हैं और प्रार्थी हैं कि श्री चरण पाठकों को इसके पढने का सच्चा लाभ प्राप्त करायें।

भवदीय
श्री राम शैवाश्रम फतेह कदल
श्रीनगर–कश्मीर

२४ जून, १९६२
१० आषाढ़ २०१९

ॐ

अथ लघुस्तवः प्रथमः ॥

नमस्त्रिपुरसुन्दर्यै ॥

लघुस्तवः प्रथमोऽयमारभ्यते ॥

ऐन्द्रस्येव शरासनस्य दधती मध्ये ललाटं प्रभां
शौक्लीं कान्तिमनुष्ण गोरिव शिरस्यातन्वती सर्वतः।
एषाऽसौ त्रिपुरा हृदि द्यु तिरिवोष्णांशोः सदाहः स्थिता
छिन्द्यान्नः सहसा पदैस्त्रिभिरघं ज्योतिर्मयी वाङ्मयी ।१।

पदच्छेदः

ऐंद्रस्य इव शरआसनस्य दधती मध्ये ललाटं प्रभां
शौक्लीं कान्तिम् अनुष्णगोः इव शिरसि आतन्वती सर्वतः ।
एषा असौ त्रिपुरा हृदि द्युतिः इव उष्णांशोः सदा अहः (हः) स्थिता
छिन्द्यात् नः सहसा पदैः त्रिभिः अघं ज्योतिः मयीवाक्मयी ॥१॥

ललाटं	— ललाट के	हः स्थिता	— ह कार में स्थित ठहरी हुई (नित्योदित)
मध्ये	— मध्य में		
ऐन्द्रस्य	— इन्द्र के	एषाऽसौ	— यही वह (जो
शरासनस्य	— धनुष के		

	(इन्द्रधनुष के)
इव	— समान
प्रभां	— शोभा को
दधती	— धारण करती हुई
शिरसि	— सिर में
अनुष्णगो:	— चन्द्रमा के
इव	— समान
शौक्लीं	— निर्मल (श्वेत)
कांतिं	— दीप्ति को
सर्वत:	सब ओर से [स, रु, अत:]
आतन्वती	— विस्तारती हुई
हृदि	— हृदय में
उष्णांशो द्युतिरिव	— { सूर्य के समान तेजस्वी
सदा	— नित्य
अह:स्थिता	— दिन की अवस्था में

	प्रत्यक्ष है और जिसका वर्णन आरम्भ किया जाता है)
ज्योतिर्मयी	— प्रकाशमय (तथा)
वाङ्मयी	— वाणीमय (विमर्श-मय)
त्रिपुरा	— त्रिपुरा भगवती*
न:	— हमारे
अघं	— पाप को
त्रिभि:	— तीन
पदै:	— पदों
	{ १ ललाट २ सिर ३ हृदय / १ ऐं २ क्लीं ३ सौ: } से
सहसा	— शीघ्र ही†
छिन्द्यात्	— नष्ट करे ॥

जो यह प्रत्यक्ष त्रिपुरा भगवती इन्द्र के धनुष के समान अपनी दीप्ति को ललाट (माथा) में धारण करती है, और सिर में चन्द्रमा जैसी निर्मल दीप्ति को सब ओर से विस्तार करती है तथा हृदय में जो प्रतिदिन नित्य सूर्य की दीप्ति जैसी शोभित है अर्थात जिसको रात्रि का कभी भी प्रवेश नहीं है, यही वह त्रिपुरा (जो सब को प्रति समय प्रत्यक्ष स्वानुभव सिद्ध है अथवा जो सबके शरीरों में नित्य इन तीन स्थानों पर तीन प्रकार के स्वरूपों को धारण करती है) हम को शीघ्र ध्यान करते हुए ही (ऊपर कहे हुए तीन स्थानों) पदों से अथवा मंत्र विधि के अनुसार मंत्र बीजों से हमारे पापों (अज्ञान रूप मल) को नष्ट करे।

जैसा कि इसी स्तव के १६वें श्लोक में कहा है—कि त्रिपुरा

*तीनों में व्यापक १ श्लोक १६ प्रथमस्तव देखिए। †[स, ह, सा बीजाक्षर]

का अर्थ सृष्टि, स्थिति और संहार करने वाली; रजोगुण, सतोगुण और तमोगुण में ठहरे हुए, ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र कहने वाले; अकार, उकार और मकार नाम वाले, ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत रूप तीन वर्णों को पूर्ण करने वाली त्रिपुरा कहलाती है, अर्थात सारे त्रिपुटी रूप जगत को विशेष से ललाट, सिर और हृदय में जो बीज अक्षरों (ऐं-क्लीं-सौः) के उच्चारण स्थान है; स्फार देती है।

मंत्रोंद्धार विधि पूर्वक :—इस स्तव के २०वें श्लोक में "बोद्धव्या निपुणं बुधैः स्तुतिरियं" में सूचना है कि पहिले श्लोक के चार पदों में से एक एक पद का पहला, दूसरा और तीसरा मंत्र अर्थात् पहिले पद में पहला मंत्र वर्ण, दूसरे में दूसरा और तीसरे में तीसरा मंत्र वर्ण स्पष्ट है। इस कारण ऐं-क्लीं-सौः एक संपूर्ण मंत्र बन जाता है। जिसका उच्चारण क्रम से तीन स्थानों पर हो सकता है और "विशेषसहितं" का तात्पर्य यही है। "सर्वतः" अर्थात "र" को भी बीजाक्षर के साथ मिला कर दूसरा बीज बनता है। जैसे :—क्लीं; इसी प्रकार "सदा हः स्थिता" अर्थात् "ह" भी मंत्रों के साथ मिलाया जाए; जैसे :– "हैं-हस्क्लीं-हसौः"। "सहसा पदैस्त्रिभिः" अर्थात् "हस" भी मंत्रों के साथ मिलावे जैसे :– हसैं, ह्स्क्लीं, ह्सौः, हसैं, ह्स्क्लरी। इन तीन बीजों के नाम "सारस्वत" "कामराज" और "वाड़व" बीज है।

शरीर में सिर और हृदय के मध्य में ललाट है। जिस में सब नाडियां मिल जाती है तथा इच्छा, ज्ञान, क्रिया शक्ति के संघट का मध्य ज्ञान शक्ति है, जिसमें इच्छा और क्रिया शक्तियां सब मिल जाती है और विश्व रूप को निर्विकल्प भाव से सारे वर्णों (रंगों) से संयुक्त स्थिति रूप में (अवतार) धारण करती है, जैसे इन्द्र धनुष यद्यपि एक ही वस्तु प्रतीत होता है फिर भी सारे वर्ण इस में स्पष्ट है।

ज्ञान शक्ति में एक ऐसा पद है जिस से शिव में भी प्रवेश

होता है और भेदमय जगत में भी क्रिया शक्ति की प्रधानता से प्रवेश होता है। सिर में तो क्रिया शक्ति प्रधान चन्द्रमा की दीप्ति जैसी सब ओर से अपने स्वरूप को सृष्टि स्वरूप में विस्तारती है और हृदय में उष्ण किरणों से भेदमय जगत को जला देती है अर्थात् संहार करती है। जैसा कि तन्त्रालोक के आह्निक ३ श्लोक ६ की टीका में कहा है :—

"ऊर्ध्वे स्थिता चन्द्रकला च शान्ता
पूर्णामृतानन्दरसेन देवि!"
"अधः संहार कृज्ज्ञेयो महानग्निः कृतान्तकः"।

इसी प्रकार हृदय अर्थात इच्छा शक्ति प्रधान अवस्था में सूर्य की दीप्ति के समान अर्थात् संहार कारक नित्य उदय में आए हुए किरणों से स्थित है। इस लिए श्लोक के क्रम पूर्वक तीन शक्तियों ज्ञान क्रिया और इच्छा शक्ति में त्रिपुरा का जो स्वरूप है उसका अभ्यास करना उपदेश दिया है, इस प्रयोजन की दृष्टि से श्लोक में प्रकाशमय और वाणीमय के विशेषणों से स्पष्ट किया है। इसका अर्थ यह है :—इच्छा आदि तीन शक्तियों त्रिपुरा का स्वरूप विमर्शमय दिखाया है और मंत्र रूप बीजाक्षरों के अर्थ में वाणीमय कहा हुआ है अर्थात् परारूप हृदय से ही पश्यन्ती मध्यमा और वैखरी वाणी द्वारा आदिक्षान्त ('अ' से 'क्ष' तक) सब वर्णों को प्रसर करती है जैसा साम्ब पंचाशिका के श्लोक ४ में स्पष्ट है ॥१॥ "या सा मित्रावरुणसदनात्"

या मात्रा त्रपुसीलतातनुलसत्तन्तूत्थिति स्पर्धिनी
वाग्बीजे प्रथमे स्थिता तव सदा तां मन्महे ते वयम्।
शक्तिः कुण्डलिनीति विश्वजनन व्यापार बद्धोद्यमा
ज्ञात्वेत्थं न पुनः स्पृशन्ति जननी गर्भेऽर्भकत्वं नराः ॥२॥

पदच्छेदः

या मात्रा त्रपुसीलतातनुलसत् तन्तु उत्थिति स्पर्धिनी
वाक् बीजे प्रथमे स्थिता तव सदा तां मन्महे ते वयम् ।
शक्तिः कुण्डलिनि इति विश्वजनन व्यापार बद्ध उद्यमा
ज्ञात्वा इत्थं न पुनः स्पृशन्ति जननी गर्भे अर्भकत्वं नराः ॥२॥

या	— जो
त्रपुसीलता	— राँगे बेल की[1]
तनु	— सूक्ष्म
उल्लसत	— निकलती हुई
तंतु	— तार के
उत्थिता	— आरम्भ के साथ
स्पर्धिनी	— समानता वाली
मात्रा	— अंश[2]
तव	— तुम्हारे
प्रथम	— पहले
वाग्बीजे	— वाणी के बीज में (परावाणी)[3]
स्थिता	— स्थित है
तां	— उसी वाणी का
ते वयं	— वह हम (उत्कृष्ट भक्त)
सदा	— नित्य
मन्महे	— विमर्श करते हैं ।
कुण्डलिनि	— कुण्डलिनी रूप[3]
शक्तिइति	— शक्ति ही
विश्वजनन	— जगत के उत्पन्न करने के
व्यापार	— काम में
बद्धोद्यमा	— उद्योग किये हुए हैं
इत्थं	— इस प्रकार (के स्वरूप को)
ज्ञात्वा	— जानकर
नराः	— मनुष्य
जननी	— माता के
गर्भे	— गर्भ में
अर्भकत्वं	— बालक भाव को
पुनः	— फिर
न स्पृशन्ति	— *स्पर्श नहीं करते हैं* [अर्थात मुक्त हो जाते हैं ।]

---

१. कश्मीरी ग्यवथीर की बेल को हिन्दी में राँगे बेल कहते हैं ।

२. ऐं, यही मात्रा, बाहर निकलने को तैयार, सृष्टि रूप ।

३. शिवभाव में लीन, प्रकाशमय और अपनी इच्छा से ही जगत रूप में परिवर्तित होने वाली शक्ति ।

जो मात्रा, अर्थात् ज्ञान द्वारा संसार भय से बचाने वाली तुम्हारे प्रथम वाग्बीज [ऐं] में ठहरी हुई—त्रपुसीलता [ग्यवथीर] की सूक्ष्मता से निकली हुई आरम्भ तार के समान है अर्थात् अतिसूक्ष्म प्रसर स्वरूप को धारण करती है। हम उस तुम्हारी मात्रा का निरन्तर विमर्श करते हैं, वही यह कुण्डलिनी शक्ति सदाशिव से पृथ्वी तक जगत को उत्पत्ति करने की क्रिया के लिए बान्धे हुए उद्योग वाली है। इस प्रकार इसका ज्ञान पाकर मनुष्य दुबारा मां के गर्भ में बालक भाव का स्पर्श नहीं करते हैं। अर्थात् इसी जन्म में मुक्त होते हैं।

रहस्य अर्थ में परा भगवती का प्रथम वग्बीज पश्यन्ती वाक् है, जो ज्ञानशक्ति रूप अपने स्वरूप सदा शिव तत्त्व में स्थित रह कर ही जगत को अंकुरायमान अवस्था में प्रकाशित करती है।

संवित अर्थ में जो कुण्डलिनी शक्ति अर्थात 'कुण्ड' शिव स्वरूप में जो लीन शक्ति है, वही मात्रा स्वरूष के ज्ञान से [सारे जगत को रक्षा करने वाली] एक प्रकार की लता अथवा रांगाबेल की तरह निकली हुई आरम्भ के साथ समानता करती है, [यह ग्यवथीर की उपमा क्यों ?] [यह लता चमकीली और इसका फूटता हुआ सिरा बहुत सूक्ष्म होता है] वह आपके वाग्बीज अर्थात 'परा' में ठहरती है। [क्योंकि पश्यन्तीं, मध्यमा, वैखरी रूप से वही सूक्ष्म तार धारण कर निकलती है। उसी तुम्हारे वाग्बीज का विमर्शन करते हैं।

जो कुण्डलिनी शक्ति जगत के उत्पति क्रिया में बांधे हुए उद्योग वाली है। ऐसे ज्ञान की प्राप्ति पर पशु प्रमाता फिर मां के गर्भ में जन्म नहीं लेते हैं अर्थात मुक्त होते हैं॥ २॥

दृष्ट्वा संभ्रमकारि वस्तुसहसा ऐऐ इति व्याहृतम्
येनाऽकूतवशादऽपीह वरदे! बिन्दुं विनाप्यक्षरम्।

[illegible]

तस्यापि ध्रुवमेव देवि तरसा जाते तवानुग्रहे
वाचःसूक्तिसुधारसद्रवमुचो निर्यान्ति वक्त्राम्बुजात् ॥३॥

पदच्छेदः

दृष्ट्वा संभ्रमकारि वस्तु सहसा ऐऐ इति व्याहृतम्
येन आकूतवशात् अपि इह वरदे ! बिन्दुं विना अपि अक्षरम् ।
तस्य अपि ध्रुवम् एव देवि ! तरसा जाते तव अनुग्रहे
वाचः सूक्तिसुधारसद्रवमुचः निर्यान्ति वक्त्रअम्बुजात् ॥ ३ ॥

वरदे !	— हे (भोग तथा मोक्ष का) वर देने वाली	व्याहृतं	— उच्चारण किया हो
		तस्य अपि	— उसके भी
येन	— जिसने	वक्त्र	— मुख
इह	— इस संसार में	अम्बुजात्	— कमल से
संभ्रमकारि	— कोई आश्चर्य जनक	देवि !	— हे क्रीडन शीलदेवी
वस्तु	— पदार्थ	तरसा	— शीघ्र ही
दृष्ट्वा	— देखकर	तव	— तुम्हारे
आकूत	— भय या हर्ष के	अनुग्रहे	— अनुग्रह के
वशात्	— अभिप्राय से	जाते	— उत्पन्न होने पर
अपि	— भी	सूक्ति	— उत्तम वाणी रूपी
सहसा	— शीघ्रता से	सुधारस	— अमृत रस के
ऐ ऐ इति	— ऐ ऐ इस प्रकार*	द्रवमुचो	— प्रवाह को देनेवाली
बिन्दुं विना	— बिन्दु के विना	वाचः	— वाणियां
अपि	— भी	ध्रुवं एव	— निश्चय ही
अक्षरम	— अक्षर का	निर्यान्ति	— निकलती हैं।

हे वरदे ! किसी आश्चर्यजनक वस्तु को देखकर शीघ्र ही

*जब कोई मनुष्य किसी आश्चर्य जनक या भयदायक वस्तु को देखता है तो उसके मुख से अकस्मात् ही ऐ ऐ पद निकलता है यही ऐं बीज अक्षर बिन्दु के बिना है।

"ऍं" के स्थान पर जिसने विना बिन्दु के ही "ऐ ऐ" किसी हर्ष या भय के अभिप्राय से भी अज्ञान में भी उच्चार किया हो अथवा ज्ञान की उत्पत्ति के विना ही 'ए ए' का विमर्श किया हो उसको भी हे देवी ! अवश्य ही यदि तुम्हारा अनुग्रह उदय में आया हो तो उसके मुखकमल से पश्यन्ती आदि वाणियां ज्ञानमय अमृतरस [चित्‌रस] को सेंचने वाली प्रसर करती हैं ॥ ३ ॥

यन्नित्ये तव कामराजमपरं मन्त्राक्षरं निष्कलम्
तत्सारस्वतमित्यवैति विरलः कश्चिद्बुधश्चेद्भुवि ।
आख्यानं प्रतिपर्व सत्यतपसो यत्कीर्तयन्तो द्विजाः
प्रारम्भे प्रणवास्पद प्रणयितां नीत्वोच्चरन्ति स्फुटम् ॥४॥

पदच्छेदः

यत् नित्ये ! तव कामराजम् अपरं मन्त्र अक्षरं निष्कलम्
तत् सारस्वतम् इति अवैति विरलः कश्चिद् बुधः चेत् भुवि ।
आख्यानं प्रतिपर्व सत्य तपसः यत् कीर्तयन्तः द्विजाः
प्रारम्भे प्रणव आस्पद प्रणयितां नीत्वा उच्चरन्ति स्फुटम् ॥ ४ ॥

(हे) नित्ये	— हे अविनाशी	विरला	— (वह) विरला भी[1]
यत् तव	— जो तुम्हारा	बुधः	— ज्ञानवान (बन जाता है)
अपरं	— दूसरा (क्लीं)	यत्	— जिस (बीज अक्षर) को
निष्कलं	— कलना रहित (क् ल् रहित)	द्विजाः	— ब्राह्मण
कामराज	— अभिलाषा पूरा करने वाला (कामराज)	प्रतिपर्व	— हर एक पर्व पर
		सत्यतपसो	— सत्यतपस नामी

१. मूर्ख अथवा बालक भी

मंत्राक्षरम्	— मंत्र अक्षर (ईं) है
तत्	— उस
सारस्वतम्	— सरस्वती के (मंत्र अक्षर को)
इति	— इस प्रकार
चेत्	— अगर
कश्चित्	— कोई
भुवि	— संसार में
अवैति	— जाने
आख्यानं	— ऋषि का नाम लेकर
कीर्तयन्तः	— कीर्तन करते हैं
प्रारम्भे	— [और] आरम्भ में
प्रणवास्पद	— ओंकार के स्थानके
प्रणयितां	— सम्बन्ध भाव को
नीत्वा	— ले जाकर (इस बीज अक्षर का)
स्फुटम्	— स्फुट प्रकार से
उच्चरन्ति	— उच्चारण करते हैं

यत्सद्यो वचसां प्रवृत्तिकरणे दृष्टप्रभावं बुधैः
तार्तीयीकमहं नमामि मनसा त्वद्बीजमिन्दु प्रभम् ।
अस्त्वौर्वोपि सरस्वतीमऽनुगतो जाड्याम्बु विच्छित्तये
गौ शब्दो गिरि वर्तते सनियतं योगं विना सिद्धिदः ॥५॥

पदच्छेदः

यत् सद्यः वचसां प्रवृत्तिकरणे दृष्टप्रभावं बुधैः
तार्तीयीकम् अहं नमामि मनसा त्वत् बीजम् इन्दु प्रभम् ।
अस्तु और्वः अपि सरस्वतीम् अनुगतः जाड्यअम्बु विच्छित्तये
गो शब्दः गिरि वर्तते स नियतं योगं विना सिद्धिदः ॥५॥

यत्	— जो (बीज अक्षर)
सद्यः	— तत्क्षणात्
वचसाम्	— वाणियों को
प्रवृत्तिकरणे	— प्रवृत करने में
और्वोऽपि	— [क] वाडव अग्नि भी[1] [ख] औ बीज तुम्हें भी
जाड्याम्बु	— अज्ञानरूपी जलों को

१. ज्ञानरूपी अग्नि जो सभी भेद रूपी अज्ञान को नाश करता है।

श्री ऐं सौः =

बुधैः	— बुद्धिमानों से	विच्छित्तये	— सुखाने के लिए
दृष्टप्रभावम्	— देखे प्रभाव वाला है	अस्तु	— [समर्थ] हो।
अहं	— मैं	स गौ शब्दो	— वह गौ शब्द
त्वत	— [उस] तुम्हारे	गिरि	— वाणी के अर्थ में
इन्दुप्रभम्	— चन्द्रमा की दीप्ति वाले	वर्तते	— प्रवर्तन होता है
तार्तीयीकम्	— तीसरे अर्थात 'सौः'	नियतं	— [और] अवश्य ही
बीजम्	— बीज अक्षर को	[क]योगं विना	— योग के विना
मनसा	— मन से	[ख]यो गं विना	— जो [बीज अक्षर] गकार के विना [अर्थात् औ बीज अक्षर]
नमामि	— नमस्कार करता हूं	सिद्धिदः	— सिद्धि को देने वाला है।
सरस्वती	— सरस्वती के		
अनुगतो	— पीछे गया हुआ[1]		

एकैकं तवदेवि बीजमनघं सव्यञ्जनाऽव्यञ्जनं,
कूटस्थं यदि वा पृथक् क्रमगतं यद्वा स्थितं व्युत्क्रमात्।
यं यं काममपेक्ष्य येन विधिना केनापि वा चिन्तितं,
जप्तं वा सफली करोति सहसा तं तं समस्तं नृणाम्॥६॥

पदच्छेदः

एक एकं तव देवि ! बीजम् अनघं सव्यञ्जन अव्यञ्जनं
कूटस्थं यदि वा पृथक् क्रमगतं यद्वा स्थितं व्युत्क्रमात्।
यं यं कामम् अपेक्ष्य येन विधिना केन अपि वा चिन्तितं
जप्तं वा सफली करोति सहसा तं तं समस्तं नृणाम्॥६॥

१. ज्ञानरूपी अग्नि जो सभी भेद रूपी अज्ञान को नाश करता है।

देवि ! — हे देवी !
तव — तुम्हारा
एकैकं — प्रत्येक
अनघं — दोषरहित
बीजं — बीज अक्षर
सव्यंजन — व्यंजन सहित
अव्यंजनं — [या] व्यंजन रहित
कूटस्थं — [या] कूटस्थ[1] बीज में ठहरा हुआ
यदि वा — या
पृथक क्रमगतं — पृथक क्रम[2] में गया हुआ
यद्वा — या
व्युत्क्रमात् — उल्टे क्रम से[3]
स्थितं — ठहरा

यं यं — जिस
कामं — अभिलाषा की
अपेक्षा — अपेक्षा करके
येन केनापि — किसी भी[4]
विधिना — विधि से
चिन्तितं — चिन्तत
जप्तवा — या जप किया हुआ
नृणाम् — मनुष्यों की
तं तं — उस उस
समस्तं — सभी [अभिलाषाओं को]
सहसा — तत्क्षणात्
सफली — सफल
करोति — करता है ।

वामे पुस्तक धारिणीमऽभयदां साक्षस्रजं दक्षिणे
भक्तेभ्यो वरदानपेशलकरां कर्पूर कुन्दो ज्ज्वलाम् ।
उज्जृम्भाम्बुजपत्रकान्तनयन स्निग्ध प्रभा लोकिनीं
येत्वामऽम्बं न शीलयन्ति मनसा तेषां कवित्वं कुतः ॥७॥

पदच्छेदः

वामे पुस्तक धारिणीम् अभयदां साक्षस्रजं दक्षिणे
भक्तेभ्यो वरदानपेशलकरां कर्पूरकुन्द उज्ज्वलाम् ।
उज्जृम्भ अम्बुजपत्र कान्तनयन स्निग्धप्रभा लोकिनीम्
ये त्वाम् अम्ब! न शीलयन्ति मनसा तेषा कवित्वं कुतः ॥ ७ ॥

१. जैसे ऐं, ओं । २. क्रम से । ३. अक्रम से । ४. क्रमाक्रम से ।

अम्ब !	— हे माता !
ये	— जो
त्वाम्	— तुम्हारा
वामे	— बाईं हाथ में
पुस्तक	— पुस्तक
धारिणीं	— धारण करती हुई
दक्षिणे	— दायें हाथ में
साक्षस्रजं	— जप माला धारण करती हुई
भक्तेभ्यो	— भक्तों को
वरदान	— वर देने के लिये
पेशलकरां	— कोमल हाथ वाली
कर्पूरकुन्द	— कर्पूर और कुन्द पुष्प की भांति
उज्ज्वलां	— दीप्तिमान
उज्जृम्भ	— विकसित
अम्बुज	— कमल के
पत्र	— पते जैसी
कान्त	— सुन्दर
नयनं	— नेत्रों की
स्निग्ध	— मन मोहक
प्रभा	— दीप्ति से
आलोकिनीं	— देखती हुई
अभयदां	— [जन्म मरण का]* भय हटाती हुई [का]
मनसा	— मन से
न शीलयन्ति	— अभ्यास नहीं करते हैं
तेषाम्	— उन [अज्ञानियों] को
कवित्वं	— सर्वज्ञता
कुतः ?	— कहां मिल सकती है ? अर्थात् नहीं मिल सकती है ।

ये त्वां पाण्डुर पुण्डरीक पटल स्पष्टाभिराम प्रभां
सिञ्चन्तीमऽमृतद्रवैरिव शिरो ध्यायन्ति मूर्ध्नि स्थिताम् ।
अश्रान्तं विकट स्फुटाक्षर पदा निर्यान्ति वक्त्राम्बुजात्
तेषां भारति ! भारती सुरसरि त्कल्लोललोलोर्मिवत् ॥८॥

पदच्छेदः

---

*इस ध्यान में देवी का चतुर्भुज ध्यान है, और उसके हाथों में पुस्तक अक्षमाला, वर और अभय दिखाये गये हैं।

ये त्वां पाण्डुर पुण्डरीक पटल स्पष्ट अभिराम प्रभां
सिञ्चन्तीम् अमृतद्रवैः इव शिरो ध्यायन्ति मूर्ध्नि स्थिताम् ।
अश्रान्तं विकट स्फुट अक्षर पदा निर्यान्ति वक्त्र अम्बुजात्
तेषां भारति ! भारती सुरसरित् कल्लोल लोल उर्मिवत् ॥ ८ ॥

भारति !	— हे सरस्वती !	स्थिताम्	— ठहरी हुई [का]
ये	— जो भक्त	ध्यायन्ति	— ध्यान करते हैं
त्वाम्	— तुम्हारा	तेषां	— उनके
पाण्डुर	— सफेद	वक्त्र	— मुख
पुण्डरीक	— कमल के	अम्बुजात्	— कमल से
पटल	— समूह जैसे	विकट	— बडे [गम्भीर]
स्पष्ट	— निर्मल [तथा]	स्फुट	— स्पष्ट
अभिराम	— सुन्दर	अक्षरपदा	— अक्षर और पदों वाली
प्रभां	— दीप्तिवाली	भारती	— वाणी
अमृतद्रवैः	— मानो अमृत के प्रवाहों से	सुरसरित्	— आकाश गंगा की
शिरः	— सिर को अर्थात् द्वादशान्त को	कल्लोललोल	— चञ्चल
सिञ्चन्तीम्	— सींचती हुई	ऊर्मिवत्	— तरंगों की तरह
मूर्ध्नि	— ललाट में	अश्रान्त	— निरन्तर
		निर्याति	— निकलती है ।

ये सिन्दूर पराग पुञ्जपिहितां त्वत्तेजसा द्यामिमाम्
उर्वीं चापि विलीन यावकरस प्रस्तार मग्नामिव ।
पश्यन्ति क्षणमऽप्यऽनन्य मनस स्तेषामऽनङ्गज्वर
क्रान्तास्त्रस्तकुरङ्ग शावक दृशो वश्या भवन्ति स्फुटम् ॥९॥

पदच्छेदः

ये सिन्दूर पराग पुञ्जपिहितां त्वत् तेजसा द्याम् इमाम्
उर्वीं च अपि विलीन यावकरस प्रस्तार मग्नाम् इव ।
पश्यन्ति क्षणम् अपि अनन्यमनसस्तेषाम् अनङ्ग ज्वर-
क्लान्ताः त्रस्तकुरङ्ग शावकदृशः वश्याः भवन्ति स्फुटम् ॥ ९ ॥

ये	— जो [भक्त]	तेषां	— उन
त्वत्	— तुम्हारे	अनन्यमनसः	— एकाग्र मन वाले [भक्तों को]
तेजसा	— तेज से	अनङ्ग	— काम देव के
द्यां	— आकाश को	ज्वर	— सन्ताप से
सिन्दूर	— सिन्दूर की	क्लान्ताः	— पीडित
पराग	— धूलि के	त्रस्त	— डरे हुए
पुञ्ज	— समूह से	कुरंग	— हिरण के
पिहितां	— छिपा हुआ	शावक	— बच्चों [की जैसी]
उर्वींचापि	— और पृथ्वी को भी	दृशः	— आंखों वाली [सुन्दर शक्तियां]
विलीन	— पिघले हुए	स्फुटं	— प्रत्यक्ष रूप में
यावकरस	— लाक्षारस के[1]	वश्या	— वश
प्रस्तार	— विस्तार में	भवन्ति	— हो जाती हैं ।
मग्नां इव	— डूबी हुई जैसी		
क्षणम् अपि	— एक क्षण भी		
पश्यन्ति	— देखते हैं		

चञ्चत्काञ्चन कुण्डलाङ्गदधरामाऽऽबद्धकाञ्ची स्रजं
ये त्वां चेतसि तद्गतेक्षणमपि ध्यायन्ति कृत्वा स्थितिम् ।
तेषां वेश्मसु विभ्रमादहरहः स्फारी भवन्त्य शिचरं
माद्यत्कुञ्जर कर्णताल तरलः स्थैर्यं भजन्ते श्रियः ॥१०॥

पदच्छेदः

---

१. कश्मीरी में ओलुत ।

चञ्चत् काञ्चन कुण्डल अङ्गद धराम् आबद्धकाञ्चीस्रजं
ये त्वां चेतसि तद्गते क्षणम् अपि ध्यायन्ति कृत्वा स्थितिम् ।
तेषां वेश्मसु विभ्रमाद् अहः अहः स्फारी भवन्त्यः चिरम्
माद्यत् कुञ्जर कर्णताल तरलाः स्थैर्यं भजन्ते श्रियः ॥१०॥

ये	— जो (भक्त)	ध्यायन्ति	— ध्यान करते हैं
चंचत	— चमकते हुए	तेषा	— उन (भक्तों) के
कांचन	— सोने के	वेश्मसु	— घरों में
कुंडल	— बालियों (और)	अहरहः	— सदा
अंगद	— बाजूबन्दों को	स्फारी	— विकास में
धराम्	— धारण किये हुए	भवन्त्यः	— आती हुई
काञ्ची	— सोने की	माद्यत्	— मस्त
स्रज	— तागडी	कुंजर	— हाथी के
आबद्ध	— पहने हुये	कर्णताल	— कनपुटी जैसी
त्वां	— तुम्हारे (स्वरूप का)	तरलाः	— चञ्चल
तद्गते	— उसी (तुम्हारे स्वरूप में) लगे हुए	श्रियः	— शक्तियां
		विभ्रमात्	— विवश होकर
चेतसि	— मन में	चिर	— चिर काल तक
क्षणमपि	— एक क्षण भी	स्थैर्यं	— स्थिरता को
स्थिति	— एकाग्रता पूर्वक	भजन्ते	— सेवन करती हैं ।

आर्भट्या शशिखण्ड मण्डित जटाजूटां नृमुण्ड स्रजं
बन्धूक प्रसवा रुणाम्बरधरां प्रेतासना ध्यासिनीम् ।
त्वां ध्यायन्ति चतुर्भुजां त्रिनयनामाऽऽपीन तुङ्गस्तनीं
मध्ये निम्नवलि त्रयाङ्कित तनुं त्वद्रूप संवित्तये ॥११॥

पदच्छेदः

आर्भटचा शशिखण्डमण्डित जटाजूटां नृमुण्डस्रजं
बन्धूक प्रसवअरुणअम्बरधरां प्रेत आसन अध्यासिनीम् ।
त्वां ध्यायन्ति चतुर्भुजां त्रिनयनाम् आपीन तुङ्गस्तनीम्
मध्ये निम्न वलि त्रय अङ्किततनुं त्वत्‌रूप संवित्तये ॥ ११ ॥

आर्भटचा	— वीरवृत्ति
शशिखण्ड	— चन्द्रकला से
मंडित	— सुशोभित
जटाजूटां	— जटाजूट वाली
नृमण्ड	— मनुष्य की खोपडी की
स्रजं	— मालाधारी
बन्धूकप्रसव	— बन्धूक पुष्प जैसे
अरुण	— लाल
अम्बरधरां	— वस्त्र धारण किये हुए
प्रेतासन	— प्रेतरूप आसन पर
अध्यासिनी	— बैठने वाली
चतुर्भुजां	— चार भुजाओं वाली
त्रिनयनां	— तीन नेत्रों वाली[1]
आपीन	— बडे
तुङ्ग	— मोटे
स्तनीं	— स्तनों वाली[2]
मध्ये	— मध्य भाग में
निम्न	— सूक्ष्म (गहरे)
वलित्रय	— तीन रेखाओं[3] के
अंकित	— चिह्न वाले (ऐसे)
तनुं	— स्वरूप का
त्वत्	— तुम्हारे
रूप	— स्वरूप के
संवित्तये	— जानने के लिये (भक्तजन)
त्वां	— तुम्हें
ध्यायन्ति	— विमर्श करते हैं ।

जातोऽप्यऽल्प परिच्छदे क्षितिभुजां सामान्य मात्रे कुले
निःशेषावनि चक्रवर्ति पदवीं लब्ध्वा प्रतापोन्नतः ।
यद्विद्याधर वृन्दवन्दित पदः श्रीवत्सराजोऽभवत्
देवि ! त्वच्चरणाम्बुज प्रणतिजः सोऽयं प्रसादोदयः॥ १२॥

---

१. तीन नेत्र–सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि । २. माता की भांति जगत् को आप्यायन और आप्लावन देने वाली । ३. तीन वलि–इच्छा, ज्ञान, तथा क्रिया ।

पदच्छेदः

जातः अपि अल्पपरिच्छदे क्षितिभुजां सामान्यमात्रे कुले
निःशेषअवनि चक्रवर्ति पदवीं लब्ध्वा प्रताप उन्नतः ।
यत् विद्याधर वृन्दवन्दितपदः श्रीवत्सराजः अभवत्
देवि ! त्वत् चरण अम्बुज प्रणतिजः स अयं प्रसाद उदयः ॥१२॥

देवि !	— हे देवी !	विद्याधर	— विद्याधरों के
क्षितिभुजां	— क्षत्रियों के	वृन्द	— समूह से
सामान्यमात्रे	— अति साधारण	वन्दित	— पूजे हुए
कुले	— कुल (और)	पदः	— चरणों वाला
अल्प	— छोटे	यत्	— जो
परिच्छदे	— वंश में	श्रीवत्सराजः	— श्रीवत्सराज
जातः	— उत्पन्न हुआ	अभवत्	— था (उसको)
अपि	— भी	सोऽयं	— वही यह
निःशेष	— सारी	प्रसाद	— प्रसाद का
अवनि	— पृथ्वी के	उदयः	— उदय
चक्रवर्ति	— चक्रवर्ती	त्वत्	— तुम्हारे
पदवीं	— पदवी को	चरण	— चरण
लब्ध्वा	— पाकर	अम्बुज	— कमलों के
उन्नतः	— ऊँचे	प्रणितजः	— प्रणाम से उत्पन्न
प्रताप	— प्रताप वाला		हुआ था ।

चण्डि ! त्वच्चरणाम्बुजार्चन विधौ बिल्वीदलोल्लुण्ठन
त्रुट्यत्कण्टक कोटिभिः परिचयं येषां न जग्मुः कराः ।
ते दण्डाङ्कुश चक्र चाप कुलिश श्रीवत्स मत्स्याङ्कितैः
जायन्ते पृथिवीभुजः कथमिवाम्भोज प्रभैः पाणिभिः ।१३।

चण्डि ! त्वत् चरण अम्बुज अर्चन विधौ बिल्वींदल उल्लुण्ठन-
त्रुटचत् कण्टक कोटिभिः परिचयं येषां न जग्मुः कराः ।
ते दण्ड अङ्कुश चक्र चाप कुलिश श्रीवत्स मत्स्य अङ्कितैः
जायन्ते पृथिवीभुजः कथम् इव अम्भोज प्रभैः पाणिभिः ।।१३।।

चण्डि !	— हे चण्डी !	जग्मुः	— प्राप्त हुए[1]
त्वत्	— तुम्हारे	ते	— वह (अभक्त)
चरण	— चरण	दंड	— दंड
अम्बुज	— कमलों की	आंकुश	— आंकस[2]
अर्चन	— पूजा की	चक्र	— चक्र
विधौ	— विधि में	चाप	— धनुष
येषां	— जिन (अभक्तों) के	कुलिश	— कुल्हाडी
कराः	— हाथ	श्रीवत्स	— श्रीवत्स रत्न
विल्वीदल	— विल्वपत्र के	मत्स्य	— [और] मछली के
उल्लुण्ठन	— तोडने से	अंक्रितैः	— चिह्नों वाले[3]
त्रुटचत्	— चुभते हुए	अम्बोजप्रभैः	— कमल जैसे
कोटिभिः	— करोडों	पाणिभिः	— हाथों से युक्त
कंटक	— कांटों से	पृथिवीभुजः	— चक्रवर्ती राजा
परिचयं	— अभ्यास को	कथ इव	— किस प्रकार.
न	— नहीं	जायन्ते	— बन सकते हैं ?

विप्राः क्षोणिभुजो विशस्तदितरे क्षीराज्यमध्वासवैः
त्वां देवि ! त्रिपुरे ! पराऽपरमयीं सन्तर्प्य पूजाविधौ ।

---

१. जिन्होंने देवी की पूजा के लिए कष्ट सहे उनको ही चक्रवर्ती राजा बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ । अभक्त ऐसा फल प्राप्त नहीं कर सकते हैं । २. कश्मीरी में टोंग ।

३. सामुद्रिक शास्त्रों की दृष्टि से दण्ड, अंकुश आदि के आकार हाथ पर होने चक्रवर्ती राजा बनने के लक्षण हैं ।

यां यां प्रार्थयते मनःस्थिरधियां तेषां त एव ध्रुवं
तां तां सिद्धिमवाप्नुवन्ति तरसा विघ्नैरविघ्नी कृतः ।१४।

पदच्छेदः

विप्राः क्षोणिभुजः विशः तत् इतरे क्षीर आज्य मधु आसवैः
त्वां देवि ! त्रिपुरे ! पर अपरमयीं सन्तर्प्य पूजाविधौ ।
यां यां प्रार्थयते मनः स्थिरधियां तेषां ते एव ध्रुवं
तां तां सिद्धिम् अवाप्नुवन्ति तरसा विघ्नैः अविघ्नी कृताः ।।१४।।

देवि ! त्रिपुरे! — हे क्रीडनशील त्रिपुरा देवी !
विप्राः — ब्राह्मण
क्षोणिभुजो — क्षत्रिय
विशः — वैश्य (और)
तत् इतरे — इनके अतिरिक्त [जीवन मुक्त]
क्षीर — दूध
आज्य — घी
मधु — शहद [और]
आसवैः — चित् रस से
त्वां — तुझ
परापरमयीं — स्थूल और सूक्ष्म रूप देवी को
पूजाविधौ — पूजा की विधि में
संतर्प्य — [तुझ को] तृप्त करके
तेषां — उन
स्थिरधियां — अटल बुद्धि वालों का
मनः — मन
यां यां — जिस जिस
सिद्धि — सिद्धि को
प्रार्थयते — प्रार्थना करता है
तां तां — उस २ [सिद्धि को]
ते — वह [भक्त]
ध्रुवं एव — निश्चय करके ही
विघ्नैः — सब विघ्नों से
अविघ्नी — निर्विघ्न
कृताः — होकर
आप्नुवन्ति — प्राप्त करते हैं ।

शब्दानां जननी त्वमत्र भुवने वाग्वादिनी त्युच्यसे
त्वत्तः केशव वासव प्रभृतयोऽप्याविर्भवन्ति स्फुटम् ।

लीयन्ते खलु यत्र कल्पविरमे ब्रह्मादयस्तेप्यमी
सा त्वं काचिदऽचिन्त्यरूपमहिमा शक्तिः परा गीयसे। १५।

पदच्छेदः

शब्दानां जननी त्वम् अत्र भुवने वाक् वादिनी इति उच्यसे
त्वत्तः केशववासव प्रभृतयः अपि आविर्भवन्ति स्फुटम् ।
लीयन्ते खलु यत्र कल्पविरमे ब्रह्मा आदयः ते अपि अमी
सा त्वं काचित् अचिन्त्यरूप महिमा शक्तिः परा गीयसे ।। १५ ।।

त्वं	— तुम	ते अमी	— वही यह
अत्र	— इस	ब्रह्मादयः	—ब्रह्मा [विष्णु] इत्यादि[2]
भवने	— जगत् में	अपि	— भी
शब्दानां	— सभी शब्दों की	कल्प	— कल्प के
जननी	— उत्पन्न करने वाली	विरमे	— अंत में
वाग्वादिनी	— वाणियों की[1] उच्चारण करने वाली	यत्र	— जिस [तुम्हारे स्वरूप] में
इति	— इस नाम से	खलु	— निश्चय करके
उच्यते	— कहलाती हो।	लीयन्ते	— लय हो जाते हैं
केशव	— विष्णु	सात्वम्	— वही तुम
वासव	— इन्द्र	काचित्	— कोई [अलौकिक]
प्रभृतयः	— इत्यादि	अचिन्त्य	— चिन्तन से अतीत
		रूप	— रूप [और]

१. चार प्रकार की वाणियां परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी हैं। यह सब परा शक्ति का ही प्रसर है और इसी से सारी सूक्ष्म, स्थूल सृष्टि की उत्पत्ति है।

२. ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र जो सृष्टि, स्थिति और संहार के अधिकारी हैं शक्ति से ही निकलते हैं और उसी में लय हो जाते हैं।

अपि	— भी
त्वतः	— तुम से ही
आविर्	— प्रकट
भवन्ति	— होते हैं ।
महिमा	— महिमा वाली
परा शक्तिः	— परा [उत्कृष्ट] शक्ति
गीयसे	— गाई जाती हो ।

देवानां त्रितयं त्रयी हुतभुजां शक्तित्रयं त्रिस्वरा
स्त्रैलोक्यं त्रिपदी त्रिपुष्करमथो त्रिब्रह्म वर्णास्त्रयः ।
यत्किञ्चज्जगति त्रिधा नियमितं वस्तु त्रिवर्गात्मकं
तत्सर्वं त्रिपुरीति नाम भगवत्यन्वेति ते तत्त्वतः ॥ १६॥

पदच्छेदः

देवानां त्रितयं त्रयी हुतभुजां शक्तित्रयं त्रिस्वराः
त्रैलोक्यं त्रिपदी त्रिपुष्करम् अथो त्रिब्रह्म वर्णाः त्रयः ।
यत् किंचित् जगति त्रिधा नियमितं वस्तु त्रिवर्ग आत्मकम्
तत् सर्वं त्रिपुरा इति नाम भगवति ! अन्वेति ते तत्त्वतः ॥१६॥

भगवति !	— हे भगवती !
देवानां त्रितयं	— तीन देवता (ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र)
हुतभुजां त्रयी	— तीन अग्नि (गार्हस्थ हवन, शमशान)
शक्ति त्रयं	— तीन शक्तियां (इच्छा,ज्ञान,क्रिया)
त्रिस्वराः	— तीन स्वर(अ,इ,उ) [उदात, अनुदात, स्वरित]
त्रैलोक्यं	— तीन लोक [भूः, भवः, स्वः] [परा, शक्ति, शिव] [इडा, पिंगला, सुषुम्ना]
त्रयः वर्णाः	— तीन वर्ण [ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य]
जगति	— जगत में
यत्	— जो
किंचित्	— कोई भी
वस्तु	— पदार्थ
त्रिधा	— तीन प्रकार से
नियमितं	— नियम में बांधा गया है ।

	परापरा, अपरा]	तत्सर्वं	— वह सब ही
त्रिपदी	— तीन पद [गायत्री, जालंधर, कामरूप]	तत्त्वत:	— वास्तवता से
		ते	— तुम्हारे
त्रिपुष्करम्	— तीन जल [नाभि, हृदय, ललाट]	त्रिपुरा	— त्रिपुरा
		इति	— ऐसे
अथो	— और	नाम	— नाम का
त्रिब्रह्म	— तीन ब्रह्म [नर,	अन्वेति	— अनुसरण करते हैं।

लक्ष्मीं राजकुले जयां रणभुवि क्षेमङ्करी मध्वनि
क्रव्याद द्विप सर्प भाजि शवरीं कान्तार दुर्गे गिरौ।
भूत प्रेत पिशाच जम्बुक भये स्मृत्वा महा भैरवीं
व्यामोहे त्रिपुरां तरन्ति विपदस्तारां च तोयप्लवे ॥१७॥

पदच्छेदः

लक्ष्मीं राजकुले जयां रणभुवि क्षेमङ्करीम् अध्वनि
क्रव्याद द्विपसर्पभाजिशवरीं कान्तार दुर्गे गिरौ।
भूतप्रेत पिशाचजम्बुकभये स्मृत्वा महाभैरवीम्
व्योमोहे त्रिपुरां तरन्ति विपदः तारां च तोयप्लवे ॥ १७ ॥

राजकुले	— राजकुल में	पिशाच	— पिशाच [और]
लक्ष्मीं	— लक्ष्मी का	जम्बुक	— गीदड इत्यादि के
रणभुवि	— युद्ध क्षेत्र में	भये	— भय में
जयां	— जया रूप का	महाभैरवी	— महा भैरवी रूप का
क्रव्याद	— शेर	व्यामोहे	— बडे भय में
द्विप:	— हाथी	त्रिपुरां	— त्रिपुरा रूप का
सर्प भाजि	— सांपों से भरे	तोय	— जल के
अध्वनि	— मार्ग में	प्लवे	— बाढ में
क्षेमंकरीम्	— क्षेमंकरी [कल्याण	तारां	— [तुम्हारे] तारारूप

	कारिणी] का
कांतार	— कठिन
दुर्गे	— दुर्गम
गिरौ	— पहाड पर
शवरीं	— शवरी रूप का
भूत प्रेत	— भूतप्रेत

	[तारने वाली] का
स्मृत्वा	— स्मरण करके (भक्त)
विपदः	— आपदाओं को
तरन्ति	— पार करते हैं। [अर्थात् आपदाओं से छुटकारा पाते हैं]

माया कुण्डलिनी क्रिया मधुमती काली कला मालिनी
मातङ्गी विजया जया भगवती देवी शिवा शाम्भवी।
शक्तिः शङ्करवल्लभा त्रिनयना वाग्वादिनी भैरवी
ह्रींकारी त्रिपुरा परापरमयी माता कुमारीत्यसि ॥१८॥

पदच्छेदः

माया कुण्डलिनी क्रियामधुमती काली कला मालिनी
मातङ्गी विजया जया भगवती देवी शिवा शाम्भवी।
शक्तिः शङ्कर वल्लभा त्रिनयना वाक् वादिनी भैरवी
ह्रींकारी त्रिपुरा पर अपर मयी माता कुमारी इति असि ॥१८॥

माया	— स्वातंत्र्य शक्ति
कुंडलिनी	— मूलाधार शक्ति
क्रिया	— क्रिया शक्ति
मधुमती	— आनन्द शक्ति
काली	— सृष्टि, स्थिति, संहार शक्ति
कला	— अमृतमय अमा कला
मालिनी	— आदि क्षान्त वर्ण

वल्लभा	— प्रिया
त्रिनयना	— (सूर्य, चन्द्र, अग्नि रूप) तीन नेत्रों वाली
वाग्वादिनी	— परा आदि वाणी रूप विमर्शमय
भैरवी	— (भरन, रवन, वमन करने वाली) भैरव की शक्ति

	— माला शक्ति	ह्रींकारी	— ह्रींकार रूप (माया बीज)
मातंगी	— मतंग ऋषि की कन्या	त्रिपुरा	— इडा, पिंगला, सुषम्ना रूप
विजया जया	— विजय जय रूप	परापरमयी	— स्थूल सूक्ष्म रूप
भगवती	— सर्व ऐश्वर्य मयी	माता	— जगत् जननी
देवी	— क्रीडन शील	कुमारी	— भेद को नष्ट करने वाली
शिवा	— कल्याण रूप	इति	— इन इन नामों से
शाम्भवी शक्ति	— शंभु की अभिन्न शक्ति	असि	— तुमही हो।
शंकर	— शंकर की		

आई पल्लवितैः परस्परयुतै र्द्वित्रि क्रमाद्यक्षरैः
काद्यैः क्षान्तगतैः स्वरादिभिरथो क्षान्तैश्च तैः सस्वरैः।
नामानि त्रिपुरे! भवन्ति खलु यान्यत्यन्त गुह्यानि ते
तेभ्यो भैरव पत्नि विंशति सहस्रेभ्यः परेभ्यो नमः ॥१६॥

पदच्छेदः

आई पल्लवितैः परस्परयुतैः द्वि त्रि क्रम आदि अक्षरैः
कआद्यैः क्षअन्त गतैः स्वर आदिभिः अथो क्षअन्तैः च तैः सस्वरैः।
नामानि त्रिपुरे! भवन्ति खलु यानि अत्यन्त गुह्यानि ते
तेभ्यः भैरवपत्नि! विंशति सहस्रेभ्यः परेभ्यः नमः ॥१९॥

त्रिपुरे!	— हे त्रिपुरा देवी!	यानि	— जो
आई पल्लवितैः	— आ और ई से लेकर प्रसर में आये हुये	अत्यन्त	— बहुत ही
		गुह्यानि	— रहस्य
परस्परयुतैः	— आपस में मिले हुये	नामानि	— नाम
कादयैः	— क से लेकर	ते	— तुम्हारे
क्षान्तगतैः	— क्ष तक	खलु	— निश्चय करके

क्रमाद्यक्षरैः	— क्रम के अक्षरों से	भवन्ति	— बनते हैं
स्वरादिभिः	— आदि में स्वर रख कर	भैरवपत्नि	— हे भैरव की शक्ति
अथ	— फिर	तेभ्यः	— उन सब
क्षान्तैः च	— क्ष जिनके अन्त में है	विंशति-सहस्रेभ्यः	— बीस हज़ार से भी
तैः	— उन (क से क्ष तक)	परेभ्यः	— अधिक (नामों को)
सस्वरैः	— स्वरों सहित (अक्षरों से)	नमः	— नमस्कार हो।

बोद्धव्या निपुणं बुधैः स्तुतिरियं कृत्वा मनस्तद्गतं
भारत्या त्रिपुरेत्यनन्य मनसो यत्राद्यवृते स्फुटम् ।
एक द्वित्रिपद क्रमेण कथितस्तत्पाद संख्याक्षरैः
मन्त्रोद्धार विधि विंशेष सहितः सत्संप्रदायान्वितः ॥२०॥

पदच्छेदः

बोद्धव्या निपुणं बुधैः स्तुतिः इयं कृत्वा मनः तद्गतं
भारत्याः त्रिपुराइति अनन्यमनसः यत्र आद्यवृते स्फुटम् ।
एकद्वि त्रिपद क्रमेण कथितः तत्पाद संख्या अक्षरैः
मन्त्र उद्धार विधिः विशेष सहितः सत्संप्रदाय अन्वितः ॥२०॥

इयं	— यह	आद्यवृत्ते	— पहले ही श्लोक में
भारत्याः	— [सरस्वती] भगवती की	एकद्वि त्रि	— पहले दूसरे और तीसरे
स्तुतिः	— स्तुति	पदक्रमेण	— पदों के क्रम से
बुधैः	— ज्ञानवानों को	तत्	— उस [श्लोक] के
निपुणं	— [अपने] तीक्ष्ण	पाद	— पादों की
मनः	— मन को	सांख्याक्षरैः	— गिनती के अक्षरों

तद्गतं कृत्वा	— उसी [देवी में] एकाग्र करके		के अनुस्वार
		विशेषसहितः	— विशेषता के सहित
अनन्य मनसा	— [और] न किसी में लगाये हुए मन से	सत्संप्रदाय	— परमार्थ सम्प्रदाय अथवा गुरु क्रम से
	[यह विमर्श करते हुए कि]	अन्वितः	— युक्त
		मंत्रोद्धार	— मंत्र के निकालने का
		विधिः	— ढंग
त्रिपुराइति	— त्रिपुरा देवी ही [सब का कारण है]	स्फुटम्	— प्रकट रूप से
		कथितः	— कहा है।
बोद्धव्या	— जाननी चाहिए		
यत्र	— जिस स्तुति में		

सावद्यं निरवद्यमस्तु यदि वा किं वा नया चिन्तया
नूनं स्तोत्रमिदं पठिष्यति नरो यस्यास्ति भक्ति स्त्वयि।
सञ्चिन्त्यापि लघुत्वमात्मनि दृढं सञ्जायमानं हठात्
त्वद्भक्त्या मुखरीकृतेन रचितं यस्मान्मयापि स्फुटम्।२१।

पदच्छेदः

स अवद्यं निर् अवद्यम् अस्तु यदि वा किं वा अनया चिन्तया
नूनं स्तोत्रम् इदं पठिष्यति नरः यस्य अस्ति भक्तिः त्वयि।
सञ्चिन्त्य अपि लघुत्वम् आत्मनि दृढं सञ्जायमानं हठात्
त्वत् भक्त्या मुखरी कृतेन रचितं यस्मात् मया अपि स्फुटम्।२१।

अनया	— इस	त्वत	— तुम्हारी
चिन्तया	— चिन्ता से	भक्त्या	— भक्ति से
किं ?	— क्या (लाभ है) ?	मुखरी कृतेन	— वाचाल बने हुये[1]

१. दूसरा अर्थ – तीक्ष्ण विमर्श युक्त

सावद्यं — (चाहे) दोष सहित
यदि वा — अथवा
निरवद्यं — दोष रहित
अस्तु — (यह स्तुति) हो
यस्य — जिस पुरुष की
त्वयि — तुझ में
भक्ति — भक्ति
अस्ति — है
(स) नर: — (वह) मनुष्य
इदं — इस
स्तोत्रं — स्तोत्र को
नूनं — अवश्य
पठिष्यति — पढेगा (विमर्श करेगा)
यस्मात् — क्योंकि

मया अपि — मैंने भी
आत्मनि — अपने आप में
ध्रुवं — निश्चय करके
दृढं — दृढ़ता से
संजायमानं — उत्पन्न हुए
लघुत्वं — अल्पभाव को[1]
संचित्य — विचार करके (विमर्श करके)
अपि — भी
हठात् — हठ से
स्फुटं — (और) स्फुट भाव से
रचितम् — [इस स्तोत्र की] रचना की।

---

१. दूसरा अर्थ — हलकापन अर्थात् शरीर, प्राण इत्यादि के अभिमान रहित।

ॐ

अथ चर्चस्तवो द्वितीयः ॥

नमस्त्रिपुरसुन्दर्यै

आनन्दसुन्दरपुरन्दरमुक्तमाल्यं
मौलौ हठेन निहितं महिषासुरस्य।
पादाम्बुजं भवतु मे विजयाय मञ्जु-
मञ्जीरशिञ्जितमनोहरमम्बिकायाः ॥१॥

पदच्छेदः

आनन्द सुन्दर पुरन्दर मुक्त माल्यं
मौलौ हठेन निहितं महिषासुरस्य ।
पाद अम्बुजं भवतु मे विजयाय मञ्जु
मञ्जीर शिञ्जित मनोहरम् अम्बिकायाः ॥१॥

आनन्द- — आनन्द देने के कारण
सुन्दर- — सुन्दर प्रसन्न बने हुए
पुरन्दर- — इन्द्र से (डाली हुई)
मुक्तमाल्यं — मोतियों की माला वाला
महिषासुरस्य — महिषासुर राक्षस के

मुञ्जु- — सुन्दर
मञ्जीर- — पायलों की
शिंजित- — मीठी झंकार से
मनोहरम् — मन को मोहित करने वाला
अम्बिकायाः — जगत माता का
पादाम्बुजं — चरणकमल

मौलौ — सिर पर
हठेन — ज़ोर से (आग्रह से)
निहितं — रखा हुआ (तथा)
मे — मेरी
विजयाय — विजय के लिए
भवतु — हो।

सौन्दर्यविभ्रमभुवो भुवनाधिपत्य-
सम्पत्तिकल्पतरवस्त्रिपुरे! जयन्ति।
एते कवित्वकुमदप्रकरावबोध-
पूर्णेन्दवस्त्वयि जगज्जननि प्रणामाः ॥२॥

पदच्छेदः

सौन्दर्य विभ्रमभुवः भुवनआधिपत्य
सम्पत्तिकल्पतरवः त्रिपुरे ! जयन्ति।
एते कवित्व कुमुद प्रकरअवबोध
पूर्ण इन्दवः त्वयि जगत् जननि ! प्रणामाः ॥२॥

जगज्जननि — हे जगत की माता
त्रिपुरे ! — त्रिपुरे
सौन्दर्य- — (आपके) सुन्दरता के
विभ्रम- — विकास की
भुवो — भूमियां
भुवन- — तीन भुवनों के
आधिपत्य- — स्वामिभाव रूपी
संपत्ति- — सम्पदा के पाने के लिए
कल्पतरवः — कल्पवृक्ष के समान (हैं)
कवित्व — (तथा) सर्वज्ञता रूपी
कुमुद- — कुमुद पुष्पों के
प्रकर- — समूह को
अवबोध- — विकास में लाने के लिए
पूर्णेन्दवः — परिपूर्ण चन्द्रमा जैसी (हैं) इस कारण
त्वयि — (भक्तों के) तुम्हारे प्रति
एते — यह [बार बार किए हुए]
प्रणामाः — प्रणाम
जयन्ति — विजय शाली हैं।

देवी को बार बार प्रणाम करने से तीनों भुवनों का स्वामि-भाव तथा सर्वज्ञता इत्यादि शक्तियां प्राप्त होती हैं।

सर्वज्ञता से सर्वकर्त्तभाव, पूर्णता, व्यापकता तथा नित्यता भी समझ लेना चाहिए।

देवि ! स्तुतिव्यतिकरे कृतबुद्धयस्ते
वाचस्पतिप्रभृतयोपि जडीभवन्ति ।
तस्मान्निसर्गजडिमा कतमोहमऽत्र
स्तोत्रं तव त्रिपुरतापनपत्नि ! कर्तुम् ॥३॥

पदच्छेदः

देवि ! स्तुति व्यतिकरे कृतबुद्धयः ते
वाचस्पति प्रभृतयः अपि जडी भवन्ति ।
तस्मात् निसर्ग जडिमा कतमः अहम् अत्र
स्तोत्रं तव त्रिपुरतापन पत्नि ! कर्तुम् ॥३॥

देवि !	— हे देवी !	तापन-	— मारने वाले [शिव] की
ते	— तुम्हारी	पत्नि !	— अभिन्न शक्ति !
स्तुति-	— स्तुति करने के	अत्र	— इस संसार में
व्यतिकरे	— उद्योग में	तव	— तुम्हारी
कृतबुद्धयः	— तीक्ष्ण बुद्धि वाले	स्तोत्रं	— स्तुति
वाचस्पति-	— बृहस्पति	कर्तुं	— करने के लिए
प्रभृतयः	— इत्यादि [देववर्ग]	निसर्ग-	— स्वाभाविक
अपि	— भी	जडिमा	— मन्द बुद्धि
जडी	— असमर्थ	अहं	— मैं
भवन्ति	— हो जाते हैं	कतमः	— किस गिनती में हूं।
तस्मात्	— इस कारण		
त्रिपुर-	— हे त्रिपुरासुर को		

मातस्तथापि भवतीं भवतीव्रताप-
विच्छित्तये स्तुतिमहार्णवकर्णधारः।
स्तोतुं भवानि स भवच्चरणारबिन्द-
भक्तिग्रहः किमपि मां मुखरी करोति ॥४॥

पदच्छेदः

मातः ! तथा अपि भवतीं भव तीव्रताप-
विच्छित्तये स्तुति महा अर्णव कर्णधारः।
स्तोतुं भवानि ! स भवत् चरण अरविन्द-
भक्तिग्रहः किम् अपि मां मुखरी करोति ॥४॥

मातः !	— हे माता !		(तथा)
तथापि	— फिर भी	भवत्-	— आपके
भव-	— संसार के	चरणविंद-	— चरण कमलों की
तीव्र-	— तीक्ष्ण	भक्तिग्रहः	— भक्ति का हठ
ताप-	— संताप के	भवतीं	— आप की
विच्छित्तये	— नाश करने के लिए	स्तोतुं	— स्तुति करने के लिए
स	— वह	मां	— मुझे
स्तुति-	— स्तुति	भवानि !	— हे भवानी !
महार्णव-	— (जो अज्ञान रूपी) बडे सागर को (पार करने के लिये)	किमपि	— कुछ कुछ
		मुखरी	— वाचाल
		करोति	— बनाता है।
कर्णधारः	— मल्लाह रूप है		

सूते जगन्ति भवती भवती बिभर्ति
जागर्ति तत्क्षयकृते भवती भवानि।

मोहं भिनत्ति भवती भवती रुणद्धि
लीलायितं जयति चित्रमिदं भवत्याः ॥५॥

पदच्छेदः

सूते जगन्ति भवती भवती बिभर्त्ति
जागर्ति तत्क्षयकृते भवती भवानि !
मोहं भिनत्ति भवती भवती रुणद्धि
लीलायितं जयति चित्रम् इदं भवत्याः ॥५॥

भवानि !	— हे भवानि
भवती	— आपही
जगन्ति	— जगतों की
सूते,	— सृष्टि करती हो,
भवती	— आप ही
(जगन्ति)	— जगतों को
बिभर्ति,	— धारण (स्थिति) करती हो,
भवती	— आप ही
तत्क्षयकृते	— उस जगत को नाश करने के लिए
जागर्ति,	— जागती रहती हो [संहार]

भवती	— आप ही
मोहं	— मोह को
भिनत्ति,	— नाश करती हो [अनुग्रह]
भवती	— आपही
रुणद्धि,	— स्वरूप का गोपन करती हो [पिधान]
इदं	— यह
चित्रं	— आश्चर्यमय
भवत्याः	— आपकी
लीलायितं	— क्रीडा
जयति	— विजय शाली है ।

यस्मिन्मनागऽपि नवाम्बुजपत्रगौरि !
गौरि ! प्रसादमधुरां दृशमाऽदधासि ।
तस्मिन्निरन्तरमनङ्गशरावकीर्ण-
सीमन्तिनीनयनसन्ततयः पतन्ति ॥६॥

पदच्छेदः

यस्मिन् मनाक् अपि नव अम्बुजपत्र गौरि !
गौरि ! प्रसादमधुरां दृशम् आदधासि ।
तस्मिन् निरन्तरम् अनङ्ग शर अवकीर्ण-
सीमन्तिनी नयन सन्ततयः पतन्ति ॥६॥

नव	— (हे) नये	अनङ्ग-	— कामदेव के
अम्बुज-	— खिले हुए कमल के	शर-	— बाणों के कारण
पत्र-	— पत्ते जैसी	अवकीर्ण-	— चंचल बनी हुई
गौरि !	— (निर्मल) गौरी !	सीमन्तिनी-	— सुन्दर शक्तियों की
यस्मिन्	— जिस भक्त पर	नयन-	— दृष्टि की
मनाक् अपि	— थोडे भी	सन्ततयः	— पंक्तियां
प्रसाद	— अनुग्रह के कारण	निरन्तरं	— लगातार
मधुरां	— आनंददायक	पतन्ति	— पडती हैं ।
दृशं	— दृष्टि		अर्थात सुन्दर अणि-
आदधासि,	— डालती हो		मादिक शक्तियां
तस्मिन्	— उस भक्त पर		उसके वश में हो
(हे) गौरि !	— हे पार्वती !		जाती हैं ।

पृथ्वीभुजोऽप्युदयनप्रवरस्य तस्य
विद्याधरप्रणतिचुम्बितपादपीठः ।
यच्चक्रवर्तिपदवीप्रणयः स एष
त्वत्पादपङ्कजरजःकणजः प्रसादः ॥७॥

पदच्छेदः

पृथ्वीभुजः अपि उदयन प्रवरस्य तस्य
विद्याधर प्रणति चुम्बित पाद पीठः ।

यत् चक्रवर्ति पदवी प्रणयः स एष
त्वत् पाद पङ्कजरजः कणजः प्रसादः ॥७॥

तस्य — उस
उदयन-प्रवरस्य — उदयनप्रवर नाम वाले
पृथ्वीभुजः — सम्राट को
अपि — भी
यत् — जो
विद्याधर- — विद्याधरों के
प्रणति- — प्रणामों से
चुम्बित- — चूमे हुए
पादपीठः — चरणों के आसन वाला [था]
चक्रवर्ति- — [उसको जो] चक्रवर्ती राजा की
पदवी- — पदवी की
प्रणयः — प्राप्ति [थी]
स — वह [प्राप्ति]
एष — इस
त्वत्- — तुम्हारे
पाद- — चरण
पंकज- — कमलों की
रजः- — धूलि के
कणजः — कणों से उत्पन्न हुआ
प्रसादः — अनुग्रह था ।

कल्पद्रुमप्रसवकल्पितचित्रपूजा-
मुद्दीपितप्रियतमामदरक्तगीतिम् ।
नित्यं भवानि ! भवतीमुपवीणयन्ति
विद्याधराः कनकशैलगुहागृहेषु ॥८॥

पदच्छेदः

कल्पद्रुम प्रसव कल्पित चित्र पूजाम्
उद्दीपित प्रियतमा मदरक्त गीतिम् ।
नित्यं भवानि ! भवतीम् उपवीणयन्ति
विद्याधराः कनक शैल गुहागृहेषु ॥८॥

भवानि !	— हे भवानी !	रक्त-	— राग से भरे हुए
विद्याधराः	— विद्याधर (देवता) वर्ग (नित्य)	गीतिम्	— गीत गाते हैं
कल्पद्रुम-	— कल्पवृक्ष के	भवतीं	— [तथा] आपका [वे विद्याधर]
प्रसव-	— फूलों से	कनक शैल-	— सुमेरु पर्वत की
कल्पित-	— की हुई (आपकी)	गुहा-	— गुफा रूपी
चित्रपूजां	— आश्चर्यजनक पूजा करते हैं,	गृहेषु	— घरों में
उद्दीपित-	— चमकाये हुए	नित्यं	— निरन्तर
प्रियतमा-	— अत्यन्त प्रिय	उपवीणयन्ति	— सूक्ष्म वीणा पर गायन करते हैं।
मद-	— मस्ती के		

लक्ष्मीवशीकरणकर्मणि कामिनीना-
माऽकर्षणव्यतिकरेषु च सिद्धमन्त्रः।
नीरन्ध्रमोहतिमिरच्छिदुरप्रदीपो
देवि ! त्वदऽङ्घ्रिजनितो जयति प्रसादः ॥६॥

पदच्छेदः

लक्ष्मी वशीकरण कर्मणि कामिनीनाम्
आकर्षण व्यतिकरेषु च सिद्धमन्त्रः।
निःरन्ध्रमोहतिमिर छिदुर प्रदीपः
देवि ! त्वद् अङ्घ्रि जनितः जयति प्रसादः ॥९॥

देवि !	— हे देवी !	नीरन्ध्र-	— बहुत ही घने
लक्ष्मी-	— लक्ष्मी को	मोह-	— मोह रूपी
वशीकरण-	— वश करने के	तिमिर-	— अन्धेरे को
कर्मणि	— काम में (तथा)	छिदुर-	— नाश करने के लिए

कामिनीनां	— सुन्दर शक्तियों को	प्रदीपः	— दीपक रूप
आकर्षण	— अपने ओर खेंचने के	त्वद्-	— तुम्हारे
व्यतिकरेषु	— उद्योग में	अंघ्रि-	— चरणों से
सिद्धमंत्रः	— न चूकने वाले मंत्र रूप	जनितो	— उपजा हुआ
		प्रसादः	— अनुग्रह
च	— और	जयति	— जय शील है।

देवी के चरणों का अनुग्रह प्राप्त करने से भोग तथा मोक्ष लक्ष्मी अवश्य प्राप्त होती है। अलौकिक शक्तियों को वश करने में यह अचूक मंत्र जैसा काम देता है और सांसारिक मोह रूपी अंधेरे से बचने के लिए ज्ञान प्रकाश देकर दीपक का काम देता है।

देवि ! त्वदऽङ्घ्रिनखरत्नभुवो मयूखाः
प्रत्यग्रमौक्तिकरुचो मुदमुद्वहन्ति ।
सेवानतिव्यतिकरे सुरसुन्दरीणां
सीमन्तसीम्नि कुसुमस्तवकायितं यैः ॥१०॥

पदच्छेदः

देवि ! त्वत् अङ्घ्रि नख रत्नभुवः मयूखाः
प्रत्यग्र मौक्तिकरुचः मुदम् उद्वहन्ति ।
सेवा नति व्यतिकरे सुरसुन्दरीणाम्
सीमन्त सीम्नि कुसुमस्तवकायित यैः ॥१०॥

देवि !	— हे देवी !	यैः	— जिन (किरणों) ने
त्वत्-	— तुम्हारे	सुरसुन्दरीणाम्	—देवस्त्रियों की
अंघ्रि-	— चरणों के	सीमन्त-	— मांग[1] के

१. मांग–सिर के बालों की बीच वाली रेखा जिसको कश्मीरी में 'सुम' कहते हैं।

नरवरत्न-	— नाखुन रूपी रत्नों से	सीम्नि	— स्थान को
भुवो	— उत्पन्न हुई	सेवा-	— सेवा (अभ्यास)
मयूरवाः	— किरणें	नति-	— प्रणाम [भक्ति]
प्रत्यग्र-	— नित्य नवीन	व्यतिकरे	— और समावेश से
मौक्तिक-	— मोतियों की	कुसुम-	— फूलों के
रुचो	— दीप्ति वाले	स्तवक-	— गुच्छे की तरह [सुन्दर]
मुदम्	— हर्ष को		
उद्वहन्ति	— धारण करती हैं	आयितम्	— रचाया है।

मूर्ध्नि स्फुरत्तुहिनदीधितिदीप्तिदीप्तं
मध्ये ललाटममरायुधरश्मिचित्रम्।
हृच्चक्रचुम्बि हुतभुक्कणिकानुरूपं
ज्योतिर्यदेतदिदमम्ब ! तव स्वरूपम् ॥११॥

पदच्छेदः

मूर्ध्नि स्फुरत् तुहिन दीधिति दीप्ति दीप्तं
मध्ये ललाटम् अमर आयुध रश्मि चित्रम्।
हृत् चक्र चुम्बि हुतभुक् कणिका अनुरूपं
ज्योतिः यत् एतत् इदम् अम्ब ! तव स्वरूपम् ॥११॥

अम्ब !	— हे माता		[रंगारंग] तथा
मूर्ध्नि	— सिर पर	हृच्चक्र-	— हृदय चक्र को
स्फुरत्-	— चमकते हुये	चुम्बि-	— स्पर्श करने वाले
तुहिन- दीधिति-	— { शीतल किरणों युक्त [चद्रमा] के	हुतभुक्-	— अग्नि के
		कणिका-	— कण के
		अनुरूपं	— सदृश
दीप्ति-	— प्रकाश से	यत्	— जो

दीप्तं	— चमकता हुआ,	एतत्	— यह
ललाटं	— माथे के	ज्योतिः	— प्रकाश है
मध्ये	— बीच में	इदम्	— यह
अमरायुध-	— इन्द्रधनुष की	तव	— तुम्हारा ही
रश्मि-	— किरणों के समान	स्वरूपम्	— स्वरूप है।
चित्र	— विचित्रता वाला		

रूपं तव स्फुरितचन्द्रमरीचिगौर-
माऽलोकते शिरसि वागधिदैवतं यः।
निःसीमसूक्तिरचनामृतनिर्भरस्य
तस्य प्रसादमधुराः प्रसरन्ति वाचः ॥१२॥

पदच्छेदः

रूपं तव स्फुरित चन्द्र मरीचि गौरम्
आलोकते शिरसि वाक् अधिदैवतं यः।
निःसीम सु उक्ति रचना अमृत निर्भरस्य
तस्य प्रसाद मधुराः प्रसरन्ति वाचः ॥१२॥

यः	— जो [भक्त]		करे]
तव	— तुम्हारे	तस्य	— उस [भक्त] की
स्फुरित-	— विकसित [परिपूर्ण]	प्रसाद-	— तुम्हारे अनुग्रह से
चन्द्र-	— चन्द्रमा की	मधुराः	— मीठी[परमार्थ पूर्ण]
मरीचि-	— किरणों जैसे	वाचः	— वाणियां
गौरं	— श्वेत [निर्मल]	प्रसरन्ति	— निकलती हैं[जोकि]
वाक्	— [सभी]वाणियों के	निःसीम	— सीमा रहित
अधिदैवतं	— अधिष्ठाता रूप		[अनन्त]
रूपं	— स्वरूप को	सूक्ति	— सुन्दर वाणियों की

शिरसि	— सिर में (द्वादशान्त में)	रचना	— रचना रूपी
आलोकते	— देखे [ध्यान से एकाग्र होकर साक्षात्कार	अमृत-	— अमृत से
		निर्भरस्य	— परिपूर्ण [होती हैं]

सिन्दूरपांसुपटलच्छुरितामिव द्यां
त्वत्तेजसा जतुरसस्नपितामिवोर्वीम्।
यः पश्यति क्षणमपि त्रिपुरे ! विहाय
व्रीडां मृडानि ! सुदृशस्तमनुद्रवन्ति ॥१३॥

पदच्छेदः

सिन्दूर पांसु पटल छुरितां इव द्यां
त्वत् तेजसा जतु रस स्नपितां इव उर्वीम् ।
यः पश्यति क्षणम् अपि त्रिपुरे ! विहाय
व्रीडां मृडानि ! सुदृशः तम् अनुद्रवन्ति ॥१३॥

त्रिपुरे !	— हे त्रिपुरा देवी ! [तीनों लोकों तथा तीनों शरीरों में व्यापिनी]	स्नपितां	— धुली हुई [उस रस में डूबी हुई]
		इव	— जैसी
		क्षणमपि	— एक क्षण मात्र भी
यः	— जो भक्त	पश्यति	— देखे
द्यां	— आकाश को	मृडानि !	— हे देवि !
सिन्दूर-	— सिन्दूर की	सुदृशः	— सुन्दर नेत्रों वाली [उत्तम शक्तियां]
पांसु-	— सूक्ष्म धूलि के		
पटल-	— समूह से	व्रीडां	— लज्जा को
छुरितां	— रंगा हुआ [आच्छादित]	विहाय	— छोडकर [अर्थात् विवश होकर]
इव	— जैसा,	तम्	— उस [भक्त] के
उर्वीं	— पृथ्वी को	अनुद्रवन्ति	— पीछे दौडती हैं ।

त्वत्-	— तुम्हारे	[उसके वश में हो
तेजसा	— तेज से	जाती हैं]
जतुरस-	— महावर[1] के रस में	

मातर्मुहूर्तमपि यः स्मरति स्वरूपं
लाक्षारसप्रसरतन्तुनिभं भवत्याः ।
ध्यायन्त्यनन्यमनसस्तमनङ्गतप्ताः
प्रद्युम्नसीम्नि सुभगत्वगुणं तरुण्यः ॥१४॥

पदच्छेद:

मातः ! मुहूर्तम् अपि यः स्मरति स्वरूपं
लाक्षारस प्रसर तन्तुनिभं भवत्याः ।
ध्यायन्ति अनन्यमनसः तं अनङ्ग तप्ताः
प्रद्युम्न सीम्नि सुभगत्वगुणं तरुण्यः ॥१४॥

मातः !	— हे माता !	अनंग-	— कामदेव से
यः	— जो [भक्त]	तप्ताः	— पीडित
लाक्षा-	— लाख के	तरुण्यः	— उत्तम शक्तियां
रस-	— रस से	अनन्य-	— एकाग्र
प्रसर-	— निकली हुई	मनसः	— मन करके [अर्थात्
तन्तु-	— सूक्ष्मतार के		उस भक्त की ओर
निभं	— समान		लगाये हुए मन
भवत्याः	— आपका		करके]
स्वरूपं	— स्वरूप	प्रद्युम्न-	— कामदेव के
मुहूर्तं	— एक क्षणमात्र	सीम्नि	— स्थान पर [अर्थात्
अपि	— भी		उसी को काम देव

१. महावर–जिसे कश्मीरी में 'अलुत' कहते हैं ।

स्मरति	— विमर्श करे,
सुभगत्व-	— सुन्दर
गुणं	— गुणों वाले
तं	— उस [भक्त] का
	मानकर]
ध्यायन्ति	— उसका ध्यान करती हैं।

योऽयं चकास्ति गगनार्णवरत्नमिन्दु-
र्योऽयं सुराऽसुरगुरुः पुरुषः पुराणः।
यद्वाममर्धमिदमऽन्धकसूदनस्य
देवि ! त्वमेव तदिति प्रतिपादयन्ति ॥१५॥

पदच्छेदः

यः अयं चकास्ति गगन अर्णव रत्नं इन्दुः
यः अयं सुर असुर गुरुः पुरुषः पुराणः।
यत् वामं अर्धं इदं अन्धकसूदनस्य
देवि ! त्वम् एव तत् इति प्रतिपादयन्ति ॥१५॥

देवि !	— हे देवी !
यो	— जो
अयं	— यह
गगन-	— (चित्) आकाश रूपी
अर्णव-	— समुद्र का
रत्नम्	— रत्न
इन्दुः	— चन्द्रमा
चकास्ति,	— चमकता है,
यो	— (और) जो
सुर-	— देवताओं
पुराणः	— आदिसिद्धि
पुरुषः	— पुरुष है,
यत्	— तथा जो
अन्धक-	— कामदेव के
सूदनस्य	— मारने वाले (शिव) का
वामम्	— बायां
अर्धं	— (शरीर का) आधा है,
तत्	— यह (सभी कुछ)
त्वम् एव	— तुम ही हो

असुर-	— तथा राक्षसों का	इति	— इस बात को
गुरुः	— गुरु	प्रतिपादयन्ति	— सिद्ध करते हैं।

इच्छानुरूपमऽनुरूपगुणप्रकर्षं
सङ्कर्षणि ! त्वमनुसृत्य यदा बिभर्षि ।
जायेत स त्रिभुवनैक गुरुस्तदानीं
देवः शिवोऽपि भुवनत्रयसूत्रधारः ॥ १६॥

पदच्छेदः

इच्छा अनुरूपं अनुरूप गुण प्रकर्षं
सङ्कर्षणि ! त्वम् अनुसृत्य यदा बिभर्षि ।
जायेत स त्रिभुवन एक गुरुः तदानीम्
देवः शिवः अपि भुवन त्रयसूत्रधारः ॥१६॥

संकर्षणि !	— हे आकर्षण कारिणी !	स	— वह
		देवः	— (क्रीडनशील) देवता
त्वम्	— आप	शिवः	— शिव
यदा	— जब	अपि	— भी
इच्छा-अनुरूपं अनुसत्य	— स्वतंत्र इच्छा के अनुसार	त्रिभुवन-	— तीनों भुवनों का
		एक-	— अद्वितीय
		गरुः	— पिता (तथा)
अनुरूप-गुण-	— योग्य गुणों के	भुवनत्रय	— तीनों भुवन रूपी (नाटक का)
प्रकर्ष	— उत्कर्ष को		
बिभर्षि	— धारण करती हो	सूत्रधारः	— सूत्र धार
तदानीं	— तब ही	जायेत	— बनता है ।

रुद्राणि ! विद्रुममयीं प्रतिमामिव त्वां
ये चिन्तयन्त्यरुणकान्तिमऽनन्यरूपाम् ।

तानेत्य पक्ष्मलदृशः प्रसभं भजन्ते
कण्ठावसक्तमृदुबाहुलतास्तरुण्यः ॥ १७॥

पदच्छेदः

रुद्राणि ! विद्रुममयीं प्रतिमां इव त्वां
ये चिन्तयन्ति अरुण कान्तिम् अनन्यरूपाम् ।
तान् एत्य पक्ष्मलदृशः प्रसभं भजन्ते
कण्ठ अवसक्त मृदुबाहु लताः तरुण्यः ॥१७॥

रुद्राणि !	— हे रुद्र की रोदन, द्रावण (सृष्टि, सं-हार) करने वाली शक्ति !	चिन्तयन्ति	— विमर्श करते हैं,
ये	— जो भक्त	पक्ष्मलदृशः	— सुन्दर नेत्रों वाली
त्वां	— आपको	कण्ठ	— (उन भक्तों के) गले में
अरुण-	— प्रातः काल के सूर्य की (तरह लाल)	अवसक्त	— डाली हुई
कान्तिम्	— दीप्ति वाली	मृदु	— कोमल
अनन्य-	— अनुपम (अलौकिक)	बाहुलताः	— लता जैसे बाहुओं वाली
रूपाम्	— रूप वाली	तरुण्यः	— युवतियां (शक्तियां)
विद्रुममयीं	— रुद्राक्षमालाधारी	तान्	— उनके
प्रतिमां	— मूर्ति का	एत्य	— पास जाकर
इव	— जैसा	प्रसभं	— बलपूर्वक
		भजन्ते	— (उनका) सेवन करती हैं ।

सुन्दर नेत्रों वाली युवतियां हठ से उनके पास जाकर उन को भजती है (धारण करती है) और उनके गले में अपनी कोमल बाजुओं को डालती है। अर्थात् नाना प्रकार की मनमोहनी सिद्धि-यां बिना आयास के उनको प्राप्त होती हैं।

त्वद्रूपमुल्लसितदाडिमपुष्परक्त-
मुद्भावयेन्मदनदैवतमक्षरं यः।
तं रूपहीनमपि मन्मथनिर्विशेष-
मालोकयन्त्युरुनितम्बभरास्तरुण्यः ॥१८॥

पदच्छेदः

त्वत् रूपं उल्लसित दाडिम पुष्प रक्तम्
उद्भावयेत् मदनदैवतम् अक्षरं यः।
तं रूपहीनम् अपि मन्मथनिर्विशेषम्
आलोकयन्ति उरुनितम्ब भराः तरुण्यः ।१८॥

यः	— जो [भक्त]	तम्	— उस [भक्त] को
त्वत्-	— तुम्हारे	रूपहीनम् अपि	— यदि वह कुरूप भी हो
उल्लसित-	— खिले हुए		
दाडिम-	— अनार के	उरुनितम्भभराः	भारी वक्षः स्थलों वाली [ज्ञान क्रिया शक्ति युक्त]
पुष्प-	— फूल [के सदृश]		
रक्तम्	— लाल वर्ण		
अक्षर	— अविनाशी	तरुण्यः	— युवतियां [शक्तियां]
रूपं	— स्वरूप को		
मदनदैवतं	— कामदेव की जैसी	मन्मथ-निर्विशेषं	— कामदेव के समान
उद्भावयेत्	— भावना करे	आलोकयन्ति	— देखती हैं।

सभी शक्तियां उस भक्त के अधीन रहती हैं। उसी पुरुष को कामदेव मानती हैं।

ध्याताऽसि हैमवति! येन हिमांशुरश्मि-
मालाऽमलद्युतिरकल्मषमानसेन।

तस्याऽविलम्बमऽनवद्यमऽनल्पकल्प-
मल्पैर्दिनैः सृजसि सुन्दरि ! वाग्विलासम् ॥१६॥

पदच्छेदः

ध्याता असि हैमवति ! येन हिमअंशु रश्मि-
माला अमल द्युतिः अकल्मष मानसेन ।
तस्य अविलम्बम् अनवद्यम् अनल्प कल्पम्
अल्पैः दिनैः सृजसि सुन्दरि ! वाक् विलासम् ॥१९॥

हैमवति !	— हे हिमालय की पुत्री ! बर्फ जैसी निर्मल !
येन	— जिस [भक्त] द्वारा
अकल्मष-	— निर्मल
मानसेन	— मन से [एकाग्र चित् होकर]
हिमांशु-	— चन्द्रमा की
रश्मि-	— किरणों के
माला-	— समूह जैसी [तुम]
अमल-	— निर्मल
द्युतिः	— दीप्ति वाली का
ध्याता	— ध्यान [विमर्श]
असि	— किया गया हो
सुन्दरि !	— हे सुन्दर शक्तियों से शोभायमान देवी !
तस्य	— उस [भक्त] का तुम
अविलम्बं	— शीघ्र ही [तत्क्षणात]
अनवदद्यं	— दोष रहित प्रकार से
अनल्पकल्पं	— अनन्त
वाग्	— वाणियों का
विलासम्	— विकास
अल्पैः	— थोडे ही
दिनैः	— दिनों में
सृजसि	— उत्पन्न करती हो ।

आधारमारुतनिरोधवशेन येषां
सिन्दूररंजितसरोजगुणानुकारि ।
तीव्रं हृदि स्फुरति देवि ! वपुस्त्वदीयं
ध्यायन्ति तानिह समीहितसिद्धसाध्याः ॥२०॥

पदच्छेदः

आधार मारुत निरोध वशेन येषां
सिन्दूर रञ्जित सरोज गुण अनुकारि ।
तीव्रं हृदि स्फुरति देवि ! वपुः त्वदीयं
ध्यायन्ति तान् इह समीहित सिद्ध साध्याः ॥२०॥

देवि !	— हे चित्स्वरूपिणी जगत को चमकाने वाली !	त्वदीयं	— तुम्हारा
		तीव्रं	— दीप्तिमान
		वपुः	— स्वरूप
येषां	— जिन (भक्तों) के	स्फुरति	— प्रकट हो जाता है
हृदि	— हृदय में	तान्	— उन (भक्तों) को
आधार-	— मूलाधार के	इह	— इस संसार में
मारुत-	— वायु के	समीहित-	— चाहे हुए (अभिलषित)
निरोध-वशेन	— रोकने के (वश करने के) कारण	सिद्ध-	— सिद्धदेव (और)
सिन्दूर-	— सिन्दूर से	साध्याः	— साध्य देव
रंजित-	— रंगे हुए	ध्यायन्ति	— ध्यान करते हैं । उसी भक्त को अपना इष्ट देव मानते हैं ।
सरोज-	— कमल के		
गुण-	— सूक्ष्म तार		
अनुकारि	— जैसा		

त्वामैन्दवीमिव कलामनुभालदेश-
मुद्भासिताम्बरतलामऽवलोकयन्तः।
सद्यो भवानि ! सुधियः कवयो भवन्ति
त्वं भावनाहितधियां कुल कामधेनुः ॥२१॥

पदच्छेदः

त्वाम् ऐन्दवीम् इव कलाम् अनुभालदेशम्
उद्भासित अम्बरतलाम् अवलोकयन्तः ।
सद्यः भवानि ! सुधियः कवयः भवन्ति
त्वम् भावना आहितधियां कुलकामधेनुः ॥२१॥

भवानि ! — हे शंकर की व्यापक शक्ति !
त्वां — तुझे
ऐन्दवीम् — चन्द्रमा की
कलाम् — (अमा) कला के
इव — समान
अनुभाल- — माथे की
देशम् — जगह पर
उद्भासित- — चमकाये हुए
अम्बरतलाम् — (चित्) आकाश वाली को
अवलोकयन्तः — प्रत्यक्ष विमर्श करते हुए
सुधियः — ज्ञानी बुद्धिमान जन
सद्यः — शीघ्र ही
कवयः — सर्वज्ञ
भवन्ति — बन जाते हैं
त्वं — आप
भावना- — श्रद्धा
आहित- — धारण किए हुए
धियां — बुद्धिवालों को
कुल- — सभी
कामधेनुः — कामनाओं की पूरणा करने वाली हो

त्वां व्यापिनीति सुमना इति कुण्डलीति
त्वां कामिनीति कमलेति कलावतीति ।
त्वां मालिनीति ललितेत्यपराजितेति
देवि ! स्तुवन्ति विजयेति जयेत्युमेति ॥२२॥

पदच्छेदः

त्वां व्यापिनी इति सुमना इति कुण्डली इति
त्वां कामिनी इति कमला इति कलावती इति ।

त्वां मालिनी इति ललिता इति अपराजिता इति
देवि ! स्तुवन्ति विजया इति जया इति उमा इति ॥२२॥

देवि !	— हे देवी !
त्वां	— आपको
व्यापिनी	— सब में व्यापक
इति	
सुमना	— सुन्दर आशय वाली
इति	
कुण्डली	— कुण्डलिनी शक्ति,
इति	
त्वाम्	— आपको
कामिनी	— इच्छा शक्ति
इति	
कलावती	— कलाओं युक्त
इति	
कमला	— संकोच विकासमय,
इति	
त्वाम्	— आपको
मालिनी	— मालाकार
इति	
ललिता	— सुन्दर
इति	
अपराजिता	— न किसी से परास्त हुई
इति	
विजया	— सब पर जय पाने वाली,
इति	
जया	— जय देने वाली,
इति	— इन इन नामों से
स्तुवन्ति	— लोग स्तुति करते हैं ।

ये चिन्तयन्त्यरुणमण्डलमध्यवर्ति
रूपं तवाम्ब ! नवयावकपङ्कपिङ्गम् ।
तेषां सदैव कुसमायुधबाणभिन्न-
वक्षःस्थला मृगदृशो वशगा भवन्ति ॥२३॥

पदच्छेदः

ये चिन्तयन्ति अरुण मण्डल मध्यवर्ति
रूपं तव अम्ब ! नव यावक पङ्क पिङ्गम् ।

तेषां सदा एव कुसुम आयुध बाण भिन्न-
वक्षः स्थलाः मृगदृशः वशगाः भवन्ति ॥२३॥

अम्ब !	— हे माता!	तेषां	— उन [भक्तों] को
ये	— जो (भक्त)	कुसुमायुध-	— कामदेव के
अरुण-	— सूर्य	बाण-	— बाणों से
मण्डल-	— मण्डल के	भिन्न-	— छलनी बने हुए
मध्यवर्ति	— बीच रहने वाले	वक्षःस्थलाः	— छाती वाली [हृदय वाली]
नव	— नवीन		
यावकपक-	— घुले हुए महावर	मृगदृशः	— सुन्दर नेत्रों वाली [उत्तम शक्तियां]
पिंगम्	— जैसे लाल		
तव	— तुम्हारे	सदैव	— नित्य ही
रूपं	— स्वरूप का	वशगा	— वश
चिन्तयन्ति	— चिन्तन [विमर्श] करते हैं	भवन्ति	— हो जाती हैं ।

उत्तप्तहेमरुचिरे त्रिपुरे ! पुनीहि
चेतश्चिरन्तनमघौघवनं लुनीहि ।
कारागृहे निगडबन्धनपीडितस्य
त्वत्संस्मृतौ झटिति मे निगडास्त्रुटन्तु ॥२४॥

पदच्छेदः

उत्तप्त हेम रुचिरे त्रिपुरे ! पुनीहि
चेतः चिरन्तनम् अघओघ वनं लुनीहि ।
कारागृहे निगडबन्धन पीडितस्य
त्वत् संस्मृतौ झटिति मे निगडाः त्रुटन्तु ॥२४॥

उत्तप्त-	— हे आग में तपाये हुए
हेम-	— [निर्मल] सोने के समान
रुचिरे	— दीप्ति वाली !
त्रिपुरे!	— हे त्रिपुरा !
पुनीहि,	— [मुझ को] पवित्र बना,
चेतः	— मेरे मन में स्थित
चिरन्तनम्	— अनन्त जन्मों के
अघौघ	— पापों के घने
वनं	— जंगल को
लुनीहि	— काटो [जिस से कि]
कारागृहे	— [शरीर रूपी] जेल खाने में
निगड-	— बेडियों[1] के
बन्धन	— बन्धनों से
पीडितस्य	— पीडित हुए
मे	— मुझे
त्वत्	— आपकी
संस्मृतौ	— स्मृति करते ही [स्वरूप का विमर्श करते ही]
झटिति	— तत्क्षणात्
निगडाः	— बन्धन
त्रुटन्तु	— टूट जायें [मैं मुक्त हो जाऊँ।]

शर्वाणि ! सर्वजनवन्दितपादपद्मे !
पद्मच्छदच्छविविडम्बितनेत्रलक्ष्मि !।
निष्पापमूर्तिजनमानसराजहंसि !
हंसि त्वमापदमऽनेकविधां जनस्य ॥२५॥

पदच्छेदः

शर्वाणि ! सर्वजन वन्दित पाद पद्मे !
पद्म छद छवि विडम्बित नेत्र लक्ष्मि !
निष्पाप मूर्ति जन मानस राजहंसि !
हंसि त्वम् आपदम् अनेक विधां जनस्य ॥२॥

शर्वाणि !	— हे संहार कारिणी !

अंतः करणों वाले]

---

१. अभिलाष रूपी बेडियां

सर्वजन- — सब लोगों से
वन्दित- — प्रणाम किये हुए
पादपद्मे ! — चरण कमलों वाली,
पद्मच्छद- — कमल पत्रों की
छवि- — शोभा से
विडम्बित- — एक समान बने हुए
नेत्रलक्ष्मि ! — नेत्रों की शोभा वाली !
निष्पापमूर्ति- — पाप रहित [पवित्र

जन- — भक्त जनों के
मानस- — मन रूपी मानसरोवर की
राजहंसि ! — हे राज हंसि !
त्वम् — आप
जनस्य — शरणागत भक्तों के
अनेकविधां — हर प्रकार की
आपदं — आपदाओं को
हंसि — नष्ट करती हो।

त्वत्पादपङ्कजरजः प्रणिपातपूतैः
पुण्यैरनल्पमतिभिः कृतिभिः कवीन्द्रैः।
क्षीरक्षपाकरदुकूलहिमावदाता
कैरप्यवापि भुवनत्रितयेऽपि कीर्तिः ॥२६॥

पदच्छेदः

त्वत् पाद पङ्कजरजः प्रणिपात पूतैः
पुण्यैः अनल्प मतिभिः कृतिभिः कविइन्द्रैः।
क्षीर क्षपाकर दुकूल हिम अवदाता
कैः अपि अवापि भुवन त्रितये अपि कीर्तिः ॥२६॥

त्वत्- — तुम्हारे
पाद- — चरण
पंकज- — कमलों की
रजः — धूलि को
प्रणिपात- — शरण होने से
— हटे हुए पापों वाले,
पूतैः — पवित्र बने हुए,
पुण्यैः

[भक्तों]
कैवीन्द्रैः — महान कवियों ने
भुवन-त्रितयेऽपि — तीनों ही भुवनों में
क्षीर- — दूध
क्षपाकर- — चन्द्रमा
दुकूल- — रेशम [और]

	[अंतः करणों वाले]	हिम-	— बर्फ [जैसा]
अनल्प-	— बडी	अवदाता	— निर्मल
मतिभिः	— बुद्धि वाले	कीर्तिः	— यश
कृतिभिः	— क्रियाशाली	अवापि	— प्राप्त किया।
कैरपि	— कुछ विरले ही		

त्वद्रूपैकनिरूपणप्रणयिताबन्धो दृशोस्त्वद्गुण-
ग्रामाकर्णनरागिता श्रवणयोस्त्वत्संस्मृतिश्चेतसि ।
त्वत्पादार्चनचातुरी करयुगे त्वत्कीर्तनं वाचि मे
कुत्रापि त्वदुपासनव्यसनिता मे देवि ! मा शाम्यतु ॥२७॥

पदच्छेदः

त्वत् रूप एक निरूपण प्रणयिता बन्धः दृशः त्वत् गुण-
ग्राम आकर्णन रागिता श्रवणयोः त्वत् संस्मृतिः चेतसि ।
त्वत् पाद अर्चन चातुरी करयुगे त्वत् कीर्तनं वाचि मे
कुत्र अपि त्वत् उपासन व्यसनिता मे देवि ! मा शाम्यतु ॥२७॥

देवि !	— हे देवी !	(मे) करयुगे	— (मेरे) दोनोंहाथों में
मे	— मेरे	त्वत्-	— तुम्हारे
दृशोः	— नेत्रों में	पाद-	— चरणों की
त्वत्-	— तुम्हारे	अर्चन-	— पूजा की
रूप-	— स्वरूप का	चातुरी	— चतुरता (हो),
एक-	— केवल	मे वाचि	— मेरी वाणी में
निरूपण-	— साक्षात्कार करने के	त्वत्-	— तुम्हारा
प्रणयिता-	— प्रेमभाव का	कीर्तनं	— गुणगान (हो)।
बन्धः	— लगाव (रहे),	कुत्र	— किसी देश, काल या अवस्था में
(मे) श्रवणयोः	— (मेरे) कानों में		
त्वत्-	— तुम्हारे		

गुण-	— गुणों के	अपि	— भी
ग्राम-	— समूह के (अनन्त)	मे	— मुझे
आकर्णन-	— सुनने का	त्वत्-	— तुम्हारी
रागिता	— राग (हो),	उपासन-	— उपासना करने की
(मे) चेतसि	— (मेरे) मन में	व्यसनिता	— (शौक) लगन
त्वत्-	— तुम्हारा	मा	— मत
संस्मृतिः	— बार बार स्मरण (हो),	शाम्यतु	— कम हो जाय।

उद्दामकामपरमार्थसरोजषण्ड-
चण्डद्युतिद्युतिमुपासितषट्प्रकाराम्।
मोहद्विपेन्द्रकदनोद्यतबोधसिंह-
लीलागुहां भगवतीं त्रिपुरां नमामि ॥२८॥

पदच्छेदः

उद्दाम काम परमार्थ सरोज षण्ड-
चण्ड द्युति द्युतिम् उपासित षट् प्रकाराम्।
मोह द्विप इन्द्र कदन उद्यत बोध सिंह-
लीला गुहां भगवतीं त्रिपुरां नमामि ॥२८॥

उद्दाम-	— उत्कृष्ट	मोह-	— मोह (अज्ञान) रूपी
काम-	— इच्छा के	द्विपेन्द्र-	— हाथी के
परमार्थ-	— परमार्थ रूपी	कदन-	— मारने के लिए
सरोज-	— कमल	उद्यत-	— तैयार,
षण्ड-	— समूह को [विकसित करने के लिए]	बोध-	— ज्ञान रूपी
		सिंह-	— शेर की
चण्डद्युति-	— सूर्य की जैसी	लीलागुहां	— क्रीडा स्थान
दद्युतिम्	— दीप्ति [तेज] वाली,	भगवतीं	— भगवती

उपासित-	— उपसना की हुई	त्रिपुरां	— त्रिपुरा को
षट्प्रकाराम्	— छः प्रकार से [पांच ज्ञानेन्द्रिय और मन द्वारा]	नमामि	— [मैं] प्रणाम करता हूं।

गणेशवटुकस्तुता रतिसहायकामान्विता
स्मरारिवरविष्टरा कुसुमबाणबाणैर्युता ।
अनङ्गकुसुमादिभिः परिवृता च सिद्धैस्त्रिभिः
कदम्बवनमध्यगा त्रिपुरसुन्दरी पातु नः ॥२६॥

पदच्छेदः

गणेश वटुक स्तुता रति सहाय काम अन्विता
स्मर अरि वर विष्टरा कुसुम बाण बाणैः युता ।
अनङ्ग कुसुम आदिभिः परिवृता च सिद्धैः त्रिभिः
कदम्ब वनमध्यगा त्रिपुर सुन्दरी पातु नः ॥२९॥

गणेश-	— गणेश (प्राण)	अनङ्ग-	— कामदेव के
वटुक-	— (और) भैरव (अपान) से	कुसुमादिभिः	— फूलों इत्यादि से [अर्थात् मन की वृत्तियों से]
स्तुता	— स्तुति की हुई,	च	— और
रति-	— रति (बुद्धि)	सिद्धैस्त्रिभिः	— तीन सिद्धों [ब्रह्मा, विष्णु, महेश, अथवा समान, उदान, व्यान] से
सहाय-	— सहित		
कामान्विता	— कामदेव (मन) के सम्बन्ध वाली,		
स्मरारि-	— शिव [जैसा]		
वर-	— उत्तम	परिवृता	— परिवारित[1] की हुई

१. परिवारित–परिवार है जिस का

विष्टरा	— आसन वाली,	कदम्बवन-	— कदम्बवन के [अर्थात् माया रूपी भेद के]
कुसुमबाण-	— कामदेव के	मध्यगा	बीच में गई हुई (व्यापक)
बाणैः	— बाणों	त्रिपुरसुन्दरी	— त्रिपुरसुन्दरीभगवती
युता	— युक्त [अर्थात् मन की तेज और चंचल वृत्तियों युक्त]	नः	— हमें
		पातु	— पालन करे।

यः स्तोत्रमेतदनुवासरमीश्वरायाः
श्रेयस्करं पठति वा यदि वा शृणोति।
तस्येप्सितं फलति राजभिरीड्यतेऽसौ
जायेत स प्रियतमो हरिणेक्षणानाम् ॥३०॥

पदच्छेदः

यः स्तोत्रम् एतत् अनुवासरम् ईश्वरायाः
श्रेयः करं पठति वा यदि वा शृणोति।
तस्य ईप्सितं फलति राजभिः ईड्यते असौ
जायेत स प्रियतमः हरिण ईक्षणानाम् ॥३०॥

यः	— जो [भक्त]	फलति,	— सफल हो जाते हैं।
ईश्वरायाः	— भगवती का	असौ	— वह
एतत्	— यह	राजभिः	— राजाओं से
श्रेयस्करं	— कल्याणकारी	ईड्यते	— पूजा जाता है,
स्तोत्रं	— स्तोत्र	स	— [और] वह
अनुवासरं	— प्रतिदिन (निरन्तर)	हरिण-	— हिरण की जैसी
पठति	— पढता है,	ईक्षणानाम्	— आंखों वाली [सुन्दर और चंचल शक्तियों] का
यदि वा	— या यदि		
शृणोति	— सुनता है	प्रियतमो	— अत्यन्त प्यारा
तस्य	— उसके	जायेत	— बनता है।
इप्सितं	— कांक्षित [मनोरथ]		

ब्रह्मेन्द्ररुद्रहरिचन्द्रसहस्ररश्मि-
स्कन्दद्विपाननहुताशनवन्दितायै ।
वागीश्वरि ! त्रिभुवनेश्वरि ! विश्वमात-
रन्तर्बहिश्च कृतसंस्थितये नमस्ते ॥३१॥

पदच्छेदः

ब्रह्मा इन्द्र रुद्र हरि चन्द्र सहस्र रश्मि-
स्कन्द द्विप आनन हुताशन वन्दितायै ।
वाक् ईश्वरि ! त्रिभुवन ईश्वरि ! विश्वमातः !
अन्तः बहिः च कृतसंस्थितये नमः ते ॥३१॥

वाक्-ईश्वरि !	— हे वाणियों की स्वामिनी सरस्वती, परा रूप !	द्विपानन-	— गणेश (और)
त्रिभुवन-	— तीनों भुवनों की	हुताशन-	— अग्नि से
ईश्वरि !	— स्वामिनी,	वन्दितायै	— प्रणाम की हुई
विश्वमातः !	— जगत माता !	अन्तर्	— अन्दर (अन्तः-करणों)
ब्रह्मा-	— ब्रह्मा,	बहिश्च	— और बाहिर (बहिष्करणों में)
इन्द्र-	— इन्द्र,	कृत-	— की हुई
रुद्र-	— रुद्र,	संस्थितये	— स्थिति वाली अर्थात् ठहरी हुई
हरि-	— विष्णु,	ते	— तुझ को
चन्द्र-	— चन्द्रमा,	नमः	— नमस्कार हो ।
सहस्ररश्मि-	— सूर्य,		
स्कन्ध-	— कुमार,		

इति श्री पञ्चस्तव्यां चर्चास्तवः द्वितीयः समाप्तः ॥२॥

ॐ

अथ तृतीयो घटस्तवः

ॐ नमस्त्रिपुरसुन्दर्यै ॥

देवि ! त्र्यम्बकपत्नि ! पार्वति ! सति ! त्रैलोक्यमातः ! शिवे !
शर्वाणि ! त्रिपुरे ! मृडानि ! वरदे ! रुद्राणि ! कात्यायिनि !
भीमे ! भैरवि ! चण्डि ! शर्वरि ! कले ! कालक्षये ! शूलिनि !
त्वत्पादप्रणतानऽनन्यमनसः पर्याकुलान्पाहि नः ॥१॥

पदच्छेदः

देवि ! त्र्यम्बकपत्नि ! पार्वति ! सति ! त्रैलोक्यमातः ! शिवे !
शर्वाणि ! त्रिपुरे ! मृडानि ! वरदे ! रुद्राणि ! कात्यायिनि !
भीमे ! भैरवि ! चण्डि ! शर्वरि ! कले ! कालक्षये ! शूलिनि !
त्वत्पादप्रणतान् अनन्यमनसः परिआकुलान् पाहि नः ॥१॥

देवि !	— हे देवी (क्रीडन शील) !	भीमे !	— हे [दुष्टों के लिए] भयानक रूपवाली!
त्र्यम्बक-	— हे [तीन नेत्रों वाले]	भैरवि !	— हे भैरव [शिव की] शक्ति !
पत्नि !	— शिव की पत्नी ! [अभिन्न शक्ति]	चण्डि !	— हे तेजस्वी रूप वाली
पार्वति !	— हे पार्वती [हिमालय की बेटी] !	शर्वरि !	— हे शिव की शक्ति !

सति !	— हे सत्ता वाली ! सत् रूप
त्रैलोक्य-	— हे तीन लोकों
मातः !	— की माता !
शिवे !	— हे कल्याण कारिणी!
शर्वाणि !	— हे शर्व अवतार की शक्ति [संहार कारिणी] !
त्रिपुरे !	— हे त्रिपुरा देवी ! [तीनों शरीरों में व्यापक]
मृडानि !	— हे शिव की शक्ति !
वरदे !	— हे [भोग तथा मोक्ष रूप] वर देने वाली
रुद्राणि !	— हे रुद्र[1] की शक्ति !
कात्यायिनि!	— हे कात्यायनि !
कले !	— हे अमा कला !
कालक्षये !	— हे काल को नाश करने वाली !
शूलिनि !	— हे त्रिशूल [इच्छा, ज्ञान, क्रिया] धारिणी
त्वत्पाद-	— तुम्हारे चरणों
प्रणतान्	— में शरण गए हुए
अनन्यमनसः	— और किसी में मन न लगाये हुए
परि-	— चारों ओर से
आकुलान्	— [हर प्रकार] व्याकुल
नः	— हम भक्तों को
पाहि	— पालना करो।

उन्मत्ता इव सग्रहा इव विषव्यासक्तमूर्च्छा इव
प्राप्तप्रौढमदा इवाति विरहग्रस्ता इवार्ता इव।
ये ध्यायन्ति हि शैलराजतनयां धन्यास्त एकाग्रत-
स्त्यक्तोपाधिविवृद्धरागमनसो ध्यायन्ति वामभ्रु वः ॥२॥

पदच्छेदः

उन्मत्ताः इव सग्रहाः इव विष व्यासक्तमूर्च्छाः इव
प्राप्तप्रौढमदाः इव अतिविरहग्रस्ताः इव आर्ताः इव ।

---

१. सृष्टि संहार करने में समर्थ

ये ध्यायन्तिहि शैलराजतनयां धन्याः ते एकाग्रतः
त्यक्त उपाधि विवृद्धरागमनसः ध्यायन्ति वामभ्रुवः ॥२॥

उन्मत्ता इव	— नशे में चूर जैसे,
सग्रहा इव	— आविष्ट जैसे,
विष-	— ज़हर
व्यासक्त-	— लगने से
मूर्च्छा	— मूच्छित
इव	— जैसे,
प्राप्त-	— प्राप्त हुए
प्रौढ-	— तीव्र
मदा	— नशे वाले
इव	— जैसे,
अति-	— बहुत ही [चिर काल से]
विरह-	— [अत्यंत प्रेमी की] विरह [की पीडा से]
ग्रस्ता इव	— ग्रस्त जैसे [उसी पीडा में डूबे हुए]
आर्ता इव	— आर्त जैसे,[1]
ये	— जो भक्त
हि	— निश्चय करके
शैलराज-	— हिमालय की
तनयां	— पुत्री [पार्वती] [पर्वत के समान न टलने वाली] का
ध्यायन्ति	— [एकाग्र होकर] ध्यान करते हैं
ते	— वे भक्त
धन्याः	— सौभाग्य शाली हैं
एकाग्रतः	— समाहितता के कारण
त्यक्त-	— छोडे हुए
उपाधि-	— शरीर की व्याधि [तथा]
विवृद्ध-	— बढे हुए
राग-	— प्रेम भरे
मनसः	— मन वाले, [ऐसे भक्त का]
वामभ्रुवः	— शिव की शक्तियां [इच्छा-ज्ञान-क्रिया]
ध्यायन्ति	— ध्यान करती हैं [उस भक्त को प्राप्त होती हैं।]

देवि ! त्वां सकृदेव यः प्रणमति, क्षोणीभृतस्तं नम-
न्त्याजन्मस्फुरदङ्घ्रिपीठविलुठत्कोटीरकोटिच्छटाः।

---

१. एकाग्रता और उत्सुकता के कारण विवश जैसे

यस्त्वामर्चति सोऽर्च्यते सुरगणैर्यः स्तौति स स्तूयते
यस्त्वां ध्यायति तं स्मरार्तिविधुरा ध्यायन्ति वामभ्रुवः ।३।

पदच्छेदः

देवि ! त्वां सकृत् एव यः प्रणमति क्षोणीभृतः तं नमन्ति
आजन्मस्फुरत् अङ्घ्रिपीठविलुठत् कोटीर कोटि छटाः ।
यः त्वाम् अर्चति सः अर्च्यते सुरगणैः यः स्तौति सः स्तूयते
यः त्वां ध्यायति तं स्मर आर्त्तिविधुराः ध्यायन्ति वामभ्रुवः ॥३॥

देवि !	— हे देवी !
यः	— जो [भक्त]
त्वां	— तुम्हें
सकृत् एव	— एक बार ही [निरन्तर छेद रहित]
प्रणमति	— प्रणाम करता है
तं	— उस [भक्त] को
आजन्म-	— जन्म से ही
स्फुरत्-	— विकास में आये हुए
अङ्घ्रि- पीठ-	— चरणों के पीठ पर (पादपीठ पर)
विलुठत्-	— लुढकते हुए
कोटीर-	— ताज की
कोटि-	सिरों की [चोटियों] की
छटाः	— शोभा वाले
क्षोणीभृतः	— [चक्रवर्ती] राजा
नमन्ति,	— नमस्कार करते हैं
यः	— जो
त्वां	— तुम्हें
सुरगणैः	— देवताओं के समूहों से
अर्च्यते	— पूजा जाता है,
यः	— जो
स्तौति	— स्तुति करता है
स	— वह
स्तूयते	— स्तुति किया जाता है,
यः	— जो
त्वां	— तुम्हें
ध्यायति	— ध्यान करता है [एकाग्र चित से लीन हो जाता है]
तं	— उसको
स्मर- आर्ति- विधुरा	— कामदेव की पीडा से चंचल बनी हुई
वामभ्रुवः	— सुन्दर शक्तियां
ध्यायन्ति	— ध्यान करती हैं

अर्चति	— पूजा करता है		[उसके वश हो
सः	— वह		जाती हैं।]

ध्यायन्ति ये क्षणमपि त्रिपुरे ! हृदि त्वां
लावण्ययौवनधनैरपि विप्रयुक्ताः।
ते विस्फुरन्ति ललितायतलोचनानां
चित्तैकभित्तिलिखितप्रतिमाः पुमांसः ॥४॥

पदच्छेदः

ध्यायन्ति ये क्षणम् अपि त्रिपुरे ! हृदि त्वां
लावण्य यौवन धनैः अपि विप्रयुक्ताः।
ते विस्फुरन्ति ललित आयत लोचनानां
चित्त एक भित्ति लिखित प्रतिमाः पुमांसः ॥४॥

त्रिपुरे !	— हे देवी !	पुमांसः	— पुरुष
ये	— जो	ललित	— अति सुन्दर [प्राप्त करने योग्य]
लावण्य-	— सुन्दरता,	आयत	— बडी [सर्वज्ञता से शोभित]
यौवन-	— जवानी [तथा]	लोचनानां	— नेत्रों वाली [ज्ञान वाली] शक्तियों के
धनैः	— धनों से	चित्ते	— मन रूपी
विप्रयुक्ता	— हीन	एक-	— केवल एक ही
अपि	— भी	भित्ति-	— आधार पर
क्षणम्	— थोडी देर के लिये	लिखित-	— खिची हुई
अपि	— भी	प्रतिमाः	— मूर्तियां जैसे
हृदि	— अपने हृदय में [समाहित होकर]	विस्फुरन्ति	— प्रकट होते हैं।
त्वां	— तुम्हारा		
ध्यायन्ति	— ध्यान करते हैं		
ते	— वे [भक्त]		

एतं किं नु दृशा पिबाम्युत विशाम्यस्याङ्गमङ्गैर्निजैः
किं वामुं निगलाम्यनेन सहसा किं वैकतामाश्रये।
तस्येत्थं विवशो विकल्पघटनाकूतेन योषिज्जनः
किं तद्यन्न करोति देवि ! हृदये यस्य त्वमावर्तसे ॥५॥

पदच्छेदः

एतं किं नु दृशा पिबामि उत विशामि अस्य अङ्गं अङ्गैः निजैः
किं वा अमुं निगलामि अनेन सहसा किं वा एकतां आश्रये ।
तस्य इत्थं विवशः विकल्पघटनाआकूतेन योषित् जनः
किं तत् यत् न करोति देवि ! हृदये यस्य त्वम् आवर्तसे ॥५॥

देवि !	— हे देवी,
यस्य	— जिस (भक्त) के
हृदये	— हृदय में
त्वम्	— आप
आवर्तसे	— वास करती हो (अपने अनुग्रह का संचार करती हो)
एतं	— इस (भक्त) को
किं	— क्या
नु	— निश्चय ही
दृशा	— नेत्रों द्वारा
पिबामि	— पी जाऊँ (टिकटिकी बांध कर देखती रहूं) ?
उत	— अथवा
अस्य	— इसके
अमुं	— इस पुरुष को
निगलामि	— निगल जाऊँ (इस को अपने स्वरूपसे अभिन्न बनाऊँ) ?
वा	— या
किं वा	— क्या
अनेन	— इस पुरुष के साथ
सहसा	— जल्दी ही (तत्क्षण)
एकताम्	— ऐक्य भाव का
आश्रये	— आश्रय लूं ?
तस्य	— उस (भक्त के बारे में)
इत्थं	— इस इस प्रकार के
विकल्प-	— विचारों की
घटना-	— रचना के
आकूतेन	— प्रयोजन से

अंगम्	— अंग में	योषितजनः[1]	— शिव की शक्तियां
निजैः	— अपने	विवशः	— बेबस (हो जाती हैं)
अंगैः	— अंगों से	तत्	— (फिर) वह
विशामि	— प्रवेश करूं (आलिंगित होकर एकता प्राप्त करूं) ?	किं	— कौनसा कार्य है
		यत्	— जो कार्य कि
वा	— या	न करोति	— (वह शक्तियां उस भक्त के लिए सिद्ध) नहीं करती हैं ?
किं	— क्या		

विश्वव्यापिनि यद्वदीश्वर इति स्थाणावनन्याश्रयः
शब्दः शक्तिरिति त्रिलोकजननि ! त्वय्येव तथ्यस्थितिः ।
इत्थं सत्यपि शक्नुवन्ति यदिमाः क्षुद्रा रुजो बाधितुं
त्वद्भक्तानऽपि न क्षिणोषि च रुषा तद्दे वि ! चित्रं महत् ।६।

पदच्छेदः

विश्वव्यापिनि यत् वत् ईश्वरः इति स्थाणौ अनन्याश्रयः
शब्दः शक्तिः इति त्रिलोकजननि ! त्वयि एव तथ्यस्थितिः ।
इत्थं सति अपि शक्नुवन्ति यत् इमाः क्षुद्राः रुजः बाधितुं
त्वत् भक्तान् अपि न क्षिणोषि च रुषा, तत् देवि ! चित्रं महत् ।६।

त्रिलोकजननि	— हे तीन लोकों की माता !	इत्थं	— इस प्रकार [यह बात]
यद्वत्	— जिस प्रकार	सति अपि	— होने पर भी
विश्वव्यापिनि	— जगत में व्याप्ति	यत्	— जो

---

१. योषिज्जनः :- युवतियां [जवान स्त्रियां] अर्थात् वह शक्तियां जो शिव को आधार रूप स्वामी मानती हैं । यह नित्यता के गुण से परिपूर्ण हैं इस कारण इन का जवान रहना अर्थात् बूढी होकर मर न जाना स्वतः सिद्ध ही है ।

	करने वाले
स्थानौ	— नित्य शिव के विषय में
अनन्याश्रयः	— दूसरे के आश्रय की अपेक्षा न करने वाला [स्वतंत्र]
ईश्वरः	— ईश्वर [ऐश्वर्यशाली]
इति शब्दः	— इस प्रकार का शब्द [प्रयुक्त होता है]; [इसी प्रकार]
शक्तिः	— शक्ति [शिव का सार]
इति शब्दः	— यह शब्द
त्वयि एव	— तुम्हारे ही विषय में
तथ्य स्थितिः	— परमार्थ स्थिति वाला है [सत्य रूप से प्रयुक्त हो सकता है]।

इमाः	— यह
क्षुद्राः	— तुच्छ
रुजो	— रोग आदि
त्वत्	— तुम्हारे
भक्तान्	— भक्तों को
अपि	— भी
बाधितुं	— रुकावट पैदा करने में
शक्नुवन्ति	— समर्थ बनते हैं
च (त्वम्)	— और [तुम]
रुषा	— क्रोधित होकर [उन रोगादिकों को]
न	— नहीं
क्षिणोषि	— नष्ट करती हो
देवि !	— हे देवी !
तत्	— वह
महत्	— बडा ही
चित्रम्	— आश्चर्य है।

इन्दोर्मध्यगतां मृगाङ्कसदृशच्छायां मनोहारिणीं
पाण्डूत्फुल्लसरोरुहासनगतां स्निग्धप्रदीपच्छविम्।
वर्षन्तीममृतं भवानि ! भगवतीं ध्यायन्ति ये देहिन-
स्ते निर्मुक्तरुजो भवन्ति विपदः प्रोज्झन्ति तान्दूरतः ॥७॥

पदच्छेदः

इन्दोः मध्यगतां मृगअङ्कसदृशछायां मनोहारिणीम्
पाण्डुउत्फुल्ल सरोरुह आसन गतां स्निग्ध प्रदीपछविम्।

RLL No. 6048 Lilti Dar of Matriculation J&K University 1963 on 1st March

वर्षन्तीम् अमृतं भवानि ! भवतीं ध्यायन्ति ये देहिनः
ते निर्मुक्तरुजः भवन्ति विपदः प्रोज्झन्ति तान् दूरतः ॥७॥

भवानि !	— हे देवी !
ये	— जो
देहिनः	— शरीरधारी
भवतीं	— आपके स्वरूप का
इन्दोः[1]	— चन्द्रमा के
मध्यगतां	— बीच में स्थित,
मृगाङ्क-[2]	— मृग है चिह्न जिस का [चन्द्रमा के]
सदृशच्छायां	— समान [निर्मल] शोभा वाली
मनोहारिणीं	— मन को हरने वाली,
पाण्डु-	— श्वेत रंग के
उत्फुल्ल-	— खिले हुए
सरोरुह-[3]	— कमल के
आसनगतां	— आसन पर ठहरी हुई,
स्निग्ध-	— तेल से भरे
प्रदीप-	— दिये की
च्छविम्[4]	— दीप्ति वाली,
अमृतं[5]	— [और] अमृत
वर्षन्तीं	— बरसाती हुई [ऐसे स्वरूप का]
ध्यायन्ति,	— एकाग्र चित्त होकर ध्यान करते हैं,
ते	— वे [जीव, भक्त]
निर्मुक्त-रुजो	— { छुटे हुए रोग वाले [नीरोग] [संसार रूपी जन्म मरण रोग से मुक्त]
भवन्ति,	— हो जाते हैं,
विपदः	— विपत्तियां
तान्	— उन भक्तों को
दूरतः	— दूर
प्रोज्झन्ति	— छोड देती हैं। (वे विपत्तियों से छुट-कारा पाते हैं)

पूर्णेन्दोः शकलैरिवातिबहलैः पीयूषपूरैरिव
क्षीराब्धेर्लहरीभरैरिव सुधापङ्कस्य पिण्डैरिव।

१. प्रमेय रूप चन्द्रमा वेद्य समूह में व्यापक
२. मृग, चंचल तथा सुन्दर (स्पन्दात्मक तथा आनन्द दायक)
३. निर्मल कमल—संकोच विकास स्वभाव, अहंता इदन्तामय
४. अटल दीप्ति—अविनाशी चैतन्य स्वरूप
५. अमृत वर्षन्तीं अर्थात् मुक्ति देने वाली।

प्रालेयैरिव निर्मितं तव वपुर्ध्यायन्ति ये श्रद्धया
चित्तान्तर्निहतार्तितापविपदस्ते सम्पदं बिभ्रति ॥८॥

पदच्छेदः

पूर्णइन्दोः शकलैः इव अति बहलैः पीयूषपूरैः इव ।
क्षीर अब्धेः लहरीभरैः इव सुधापङ्कस्य पिण्डैः इव ।
प्रालेयैः इव निर्मितं तव वपुः ध्यायन्ति ये श्रद्धया
चित्त अन्तर् निहत आर्ति ताप विपदः ते सम्पदं बिभ्रति ॥८॥

पूर्ण-	— पूर्ण
इन्दोः	— चन्द्रमा के
शकलैः[1]	— गोल आकार से
इव	— जैसा
(निर्मितं)	— (बना हुआ)
अति	— बहुत ही
बहलैः	— बढे हुए
पीयूष-	— अमृत के
पूरैः[2]	— प्रवाहों से
इव	— जैसा
(निर्मितं)	— (बना हुआ)
क्षीराब्धेः	— क्षीर समुद्र के
लहरी-	— तरंगों के
भरैः[3]	— समूहों से
प्रालेयैः[4]	— बर्फ से
इव	— जैसा
निर्मितं	— बना हुआ(ऐसे ऐसे)
तव	— तुम्हारे
वपुः	— स्वरूप का
ये	— जो [भक्त]
श्रद्धया	— श्रद्धा से
ध्यायन्ति	— ध्यान करते हैं
चित्त-	— मन के
अन्तर्	— बीच में
नि+हत-	— पूर्णतया हटे हुए
आर्ति-	— दीनता,
ताप-	— दुःख (व्यथा)

१. पूर्ण चन्द्रमा जैसा—अमृत का आगार, दोनों [अहं, इदं] अभिन्न [चित्, आनन्द] २. अमृत के प्रवाह—चन्द्रमा से निकले हुए। [भेद का आरम्भ] (इच्छा या स्वातंत्र्य शक्ति) ३. तरंगों का समूह—भेद प्रकट। (ज्ञान शक्ति का स्फार) ४. बर्फ से बना हुआ (अत्यंत संकोच, माया शक्ति) चित् रस आश्यानता।

इव	— जैसा	विपदः	— विपदा (वाले)
(निर्मितं)	— (बना हुआ)	ते	— वे भक्त
सुधा-	— अमृत के	सम्पदं	— (लौकिक तथा पारमार्थिक) सम्पत्तियों को
पङ्कस्य	— (गाढे) गारे के	बिभ्रति	— धारण करते हैं।
पिंडैः[1]	— गोलों से		
इव	— जैसा		
(निर्मितं)	— (बना हुआ)		

ये संस्मरन्ति तरलां सहसोल्लसन्तीं
त्वां ग्रन्थिपञ्चकभिदं तरुणार्कशोणाम्।
रागार्णवे बहलरागिणि मज्जयन्तीं
कृत्स्नं जगद्दधति चेतसि तान्मृगाक्ष्यः ॥६॥

पदच्छेदः

ये संस्मरन्ति तरलां सहसा उल्लसन्तीं
त्वां ग्रन्थि पञ्चक भिदं तरुण अर्क शोणाम्।
राग अर्णवे बहलरागिणि मज्जयन्तीं
कृत्स्नं जगत् दधति चेतसि तान् मृग अक्ष्यः ॥९॥

ये	— जो [भक्त]	राग् अर्णवे	— राग रूपी आनन्द सागर में
तरलां	— चंचल रूप वाली [संकोच विकासमय]	मज्जयन्तीं	— डुबाते हुए [तुम्हारे स्वरूप का]
सहसा	— इच्छा मात्र से ही	संस्मरन्ति	— बार बार स्मरण से विमर्श करते हैं
उल्लसन्तीं	— विकसित रूप वाली		
पंचक-	— पांच		

१. अमृत के गारे के गोले–अमृत अप्रकट, चित् रूप का संकोच और जगत भेदमय (क्रिया शक्ति का स्फार)

ग्रंथि[1] — गांठ [आवरण]
भिदं — हटाने वाली
तरुण-[2] — छोटे [प्रातः काल के]
अर्क- — सूर्य [जैसे]
शोणां — रक्त वर्ण [वाली]
त्वां — तुम्हें
कृतस्नं — सारे
जगत् — जगत को
बहल-रागिणि — राग तत्त्व से भरे
मृगाक्ष्यः — मृग की जैसी सुन्दर नेत्रों वाली [आनन्द दायक इच्छा से प्राप्त करने योग्य दिव्य शक्तियां]
तान् — उन भक्तों को
चेतसि — अपने मन में
दधति — धारण करती हैं। [उस भक्त पर मोहित होकर उसके वश हो जाती हैं]

लाक्षारसस्नपितपङ्कजतन्तुतन्वी-
मऽन्तः स्मरत्यऽनुदिनं भवतीं भवानि।
यस्तं स्मरप्रतिममऽप्रतिमस्वरूपा
नेत्रोत्पलैर्मृगदृशो भृशमऽर्चयन्ति ॥१०॥

पदच्छेदः

लाक्षारसस्नपित पङ्कज तन्तु तन्वीम्
अन्तः स्मरति अनुदिनं भवतीं भवानि !
यः तं स्मरप्रतिमं अप्रतिम स्वरूपाः
नेत्रउत्पलैः मृगदृशः भृशम् अर्चयन्ति ॥१०॥

भवानि ! — हे देवी !
यः — जो भक्त
प्रतिमम् — समान [जैसे]
तं — उस भक्त को

1. पांच ग्रंथियां–चैतन्य स्वरूप को छिपाने वाली पांच शक्तियां अर्थात् कला, विद्या, राग, काल और नियति
2. ज्ञान शक्ति रूप प्रातः काल का सूर्य अति उष्ण न होने के कारण सुखदायक।

भवतीं	— आपको	अप्रतिम-	— उपमा रहित
लक्षारस- स्नपति-	— { लाख के रस में धुले हुए	स्वरूपाः	— स्वरूप वाली
पंकज-	— कमलों के	मृगदृशः	— मृग जैसी नेत्रों वाली [सुन्दर दिव्य शक्तियां]
तन्तुतन्वीं	— सूक्ष्मतार जैसे [स्वरूप का]	नेत्र+उत्पलैः	— [अपने] नेत्र कमलों से
अन्तः	— सुषम्ना धाम में		
अनुदिनं	— प्रतिदिन [निरन्तर]	भृशम्	— अत्यधिकता से
स्मरति,	— स्मरण करता है	अर्चयन्ति	— पूजती हैं।
स्मर-	— कामदेव के		

स्तुमस्त्वां वाचमऽव्यक्तां
हिमकुन्देन्दुरोचिषम्।
कदम्बमालां बिभ्राणा-
माऽऽपादतललम्बिनीम्॥११॥

पदच्छेदः

स्तुमः त्वां वाचम् अव्यक्तां
हिम कुन्द इन्दु रोचिषम्।
कदम्ब मालां बिभ्राणाम्
आपादतल लम्बिनीम् ॥११॥

त्वां	— तुझ	कदम्ब-	— कदंब पुष्पों की
हिम-[1]	— { बर्फ,	मालां	— माला को
कुन्द-[2]	कुन्द पुष्प [और]	बिभ्राणाम्	— धारण करने वाली
इन्दु-[3]	चन्द्रमा की जैसी	अव्यक्तां	— { अप्रकट
रोचिषम्	तेज वाली [तथा]	वाचम्	वाणी

१. हिम—बर्फ का एक ही अर्थात् छेद रहित निर्मल तख्ता—पश्यन्ती वाणी।
२. कुन्द पुष्प—संकुचित और एक दूसरे से भिन्न—मध्यमा वाणी।
३. इन्दु—चन्द्रमा—वेद्य समूह—वैखरी वाणी।

आपादतल-लम्बिनीम्	— चरणों के तले तक लटकती हुई	स्तुमः	— [परा रूप] की [हम] स्तुति करते हैं।

मूर्ध्नीन्दोः सितपङ्कजासनगतां प्रालेयपाण्डुत्विषं
वर्षन्तीमऽमृतं सरोरुहभुवो वक्त्रेऽपि रन्ध्रेऽपि च।
अच्छिन्ना च मनोहरा च ललिता चाऽतिप्रसन्नाऽपि च
त्वामेव स्मरतां स्मरारिदयिते ! वाक् सर्वतो वल्गति ।१२।

पदच्छेदः

मूर्ध्नि इन्दोः सितपङ्कज आसनगतां प्रालेयपाण्डुत्विषं
वर्षन्तीम् अमृतं सरोरुहभुवः वक्त्रे अपि रन्ध्रे अपि च।
अच्छिन्ना च मनोहरा च ललिता च अति प्रसन्ना अपि च
त्वाम् एव स्मरतां स्मर अरि दयिते ! वाक् सर्वतो वल्गति ॥१२॥

स्मारि-	— हे शंकर की	वर्षन्तीं	— बरसानेवाली
दयिते !	— शक्ति !	त्वाम् एव	— तुम्हें ही [तुम्हारे ऐसे स्वरूप का]
मूर्ध्नि	— सिर पर	स्मरतां	— स्मरण करने वालों को
इन्दोः	— चन्द्रमा के जैसे आनन्द दायक तथा	अच्छिन्ना	— छेद रहित [निरन्तर]
सित-	— श्वेत [निर्मल] प्रकाशमान	च	— तथा
		मनोहरा	— मन को हरने वाली
पंकज-	— कमल के	च	— तथा
आसनगतां	— आसन पर स्थित,	ललिता अपि	— सुन्दर भी
प्रालेय-	— बर्फ जैसी	च	— और
पाण्डु-	— सफेद चमकीली	अति	— बहुत ही
त्विषं	— दीप्ति वाले,	प्रसन्ना	— निर्मल
वक्त्रेऽपि	— मूलाधार पर भी		

	[तथा]	अपि	— भी [ऐसी]
रन्ध्रेऽपि च	— ब्रह्मरन्ध पर भी	वाक्	— वाणी
सरोरुह-	— कमल के	सर्वतो	— सब ओर से
भुवः	— पत्तों पर	वल्गति	— प्रकट होती है [वि-कास में आती है।
अमृतं	— अमृत		

ददातीष्टान्भोगान्क्षपयति रिपून्हन्ति विपदो
दहत्याधीन्व्याधीञ्छमयति सुखानि प्रतनुते।
हठादऽन्तर्दुःखं दलयति पिनष्टीष्टविरहं
सकृद्ध्याता देवी किमिव निरवद्यं न कुरुते ॥१३॥

पदच्छेदः

ददाति इष्टान् भोगान् क्षपयति रिपून् हन्ति विपदः
दहति आधीन् व्याधीन् शमयति सुखानि प्रतनुते।
हठात् अंतर्दुःखं दलयति पिनष्टि इष्टविरहम्
सकृत् ध्याता देवी किम् इव निःअवद्यं न कुरुते ॥१३॥

सकृत्	— एक ही बार [निरन्तर प्रवाहरूप]	प्रतनुते	— विस्तारती है,
		अन्तः	— अन्तः करणों के
ध्याता	— ध्यान की हुई	दुःखं	— दुखों को
देवी	— देवी	हठात्	— ज़ोर से
इष्टान्	— चाहे हुए	दलयति	— नष्ट करती है,
भोगान्	— भोगों को	इष्ट-	— प्यारों के
ददाति	— देती है,	विरहं	— वियोग को
रिपून्	— शत्रुओं को	पिनष्टि	— पीसती है [प्यारों से मिलाप कराती है।]
क्षपयति	— नाश करती है,		
विपदः	— आपत्तियों को		
हन्ति	— हटाती है,	किम् इव	— वह कौनसी बात है

			[जिसको कि देवी]
आधीन्	— मन के रोगों को	निरवद्यं	— दोष रहित प्रकार से
दहति	— जलाती है	न कुरुते	— [सिद्ध] नहीं करती है ?
व्याधीन	— शरीर के रोगों को		
शमयति	— शांत करती है,		
सुखानि	— सुखों को		

यस्त्वां ध्यायति वेत्ति विन्दति जपत्यालोकते चिन्तय-
त्यन्वेति प्रतिपद्यते कलयति स्तौत्याश्रयत्यर्चति।
यश्च त्र्यम्बकवल्लभे ! तव गुणानाऽऽकर्णयत्यादरा-
त्तस्य श्रीर्न गृहादपैति विजयस्तस्याग्रतो धावति ॥१४॥

पदच्छेदः

य: त्वां ध्यायति वेत्ति विन्दति जपति आलोकते चिन्तयति
अन्वेति प्रतिपद्यते कलयति स्तौति आश्रयति अर्चति ।
य: च त्र्यम्बकवल्लभे ! तव गुणान् आकर्णयति आदरात्
तस्य श्री:नगृहात् अपैति विजय: तस्य अग्रत: धावति ॥१४॥

त्र्यम्बक-	— हे शिव की	गुणान्	— गुणों को
वल्लभे !	— प्यारी ! (हे देवी)	आदरात्	— आदर के साथ
य:	— जो कोई	आकर्णयति	— (समाहित होकर) सुनता है,
त्वां	— तुम्हें		
ध्यायति	— ध्यान करता है,	तस्य	— उस पुरुष के
वेत्ति	— जानता है,	गृहात्	— घर से
विन्दति	— प्राप्त करता है,	श्री:	— भोग और मोक्ष रूप लक्ष्मी
जपति	— जप करता है,		
आलोकते	— देखता है,	न अपैति	— { नहीं दूर जाती है (उस के वश में रहती है)
चिन्तयति	— चिन्तन करता है,		
अन्वेति	— पीछे चलता है,		

प्रतिपद्यते	— शरण में आता है,		(तथा)
कलयति	— विमर्श करता हूं,	विजयः	— (भेद पर) विजय
स्तौति	— स्तुति करता है,	तस्य	— उसके
आश्रयति	— आसरा लेता है,	अग्रतो	— आगे आगे
अर्चति	— पूजता है,	धावति	— दौडती है। वह सब दुःखों और आत्मा के आवरण रूप मोह को जीत कर आत्मलाभ प्राप्त करता है।
त्र्यम्बक-वल्लभे !	— शिव की प्यारी (देवी)		
च	— और		
यः	— जो		
तव	— तुम्हारे		

किं किं दुःखं दनुजदलिनि ! क्षीयते न स्मृतायां
का का कीर्तिः कुलकमलिनि ! ख्याप्यते न स्तुतायाम् ।
का का सिद्धिः सुरवरनुते ! प्राप्यते नार्चितायां
कं कं योगं त्वयि न चिनुते चित्तमालम्बितायाम् ॥ १५॥

पदच्छेदः

किं किं दुःखं दनुज दलिनि ! क्षीयते न स्मृतायाम्
का का कीर्तिः कुलकमलिनि ! ख्याप्यते न स्तुतायाम् ।
का का सिद्धिः सुरवरनुते ! प्राप्यते न अर्चितायाम्
कं कं योगं त्वयि न चिनुते चित्तम् आलम्बितायाम् ॥१५॥

दनुजदलिनि!	— हे राक्षसों की संहार कारिणी (देवी)!	सुरवरनुते !	— हे श्रेष्ट देवताओं से नमस्कार की गई (देवी)!
किं किं	— कौन २ सा		
दुःखं	— (ऐसा) दुख है	का का	— [वह] कौन २ सी
स्मृतायां	— (जो तुम्हारे) स्म-	सिद्धिः	— सिद्धि है

रण करने पर
न क्षीयते — नष्ट नहीं होता है?
कुलकमलिनि ! — हे विश्व रूपी कमल को खिलाने वाली (देवी) !
का का — (वह) कौन २ सी
कीर्तिः — कीर्ति है
स्तुतायाम् — जो (तुम्हारी) स्तुति करने पर
न ख्याप्यते — सिद्ध नहीं होती है?
अर्चितायां — [जो तुम्हारी] पूजा करने पर
न प्राप्यते — प्राप्त नहीं होती है?
कं कं — [वह] कौन २ सा
योगं — योग है
त्वयि — [जो] तुम में
चित्तम् — मन
आलम्बितायाम् लगाने पर
न चिनुते — जाना नहीं जाता है ?

ये देवि ! दुर्धरकृतान्तमुखान्तरस्था
ये कालि ! कालघनपाशनितान्त बद्धाः ।
ये चण्डि ! चण्डगुरुकल्मषसिन्धुमग्ना-
स्तान्पासि मोचयसि तारयसि स्मृतैव ॥ १६॥

पदच्छेदः

ये देवि ! दुर्धर कृतान्त मुख अन्तरस्थाः
ये कालि ! कालघनपाशनितान्तबद्धाः ।
ये चण्डि ! चण्ड गुरु कल्मष सिन्धुमग्नाः
तान् पासि मोचयसि तारयसि स्मृता एव ॥१६॥

देवि ! — हे [चमकने वाली स्वप्रकाश] देवी !
ये — जो
दुर्धर- — धारण करने के लिए कठिन [असह्य]
वाली [देवी] !
ये — [और] जो
चण्ड- — कठिन [और]
गुरुकल्मष- — भारी पापों के
सिन्धु- — समुद्र में

कृतान्त-	— मृत्यु के
[1]मुखान्तरस्था—	मुख में पड़े हुए हों,
कालि !	— हे काल को जीतने वाली !
ये	— जो
काल-	— काल शक्ति की
घनपाश-	— घनी फांसियों से
नितान्त-	— ज़ोर से
[2]बद्धाः	— [जो] बांधे गये हों,
चण्डि !	— हे तेजोमय भयानक रूप धारण करने
[3]मग्नाः	— डूबे हों,
तान्	— ऐसे सभी [आर्त भक्तों को]
स्मृता एव	— [उनके द्वारा] स्मरण किये जाने पर [क्रमशः]
पासि[1]	— बचाती है
मोचयसि[2]	— छुटकारा दिलाती है
तारयसि[3]	— पार लगाती है ।

लक्ष्मीवशीकरणचूर्णसहोदराणि
त्वत्पादपङ्कजरजांसि चिरं जयन्ति ।
यानि प्रणाममिलितानि नृणां ललाटे
लुम्पंति दैवलिखितानि दुरक्षराणि ॥१७॥

पदच्छेदः

लक्ष्मी वशीकरणचूर्ण सह उदराणि
त्वत् पादपङ्कजरजांसि चिरं जयन्ति ।
यानि प्रणाममिलितानि नृणां ललाटे
लुम्पन्ति दैव लिखितानि दुर् अक्षराणि ॥१७॥

लक्ष्मी-	— (भोग) लक्ष्मी को
वशीकरण-	— वश करने के
चूर्ण-	— औषधि के
सहोदराणि	— सगे भाई अर्थात् स-
	मनुष्यों के
ललाटे	— माथे पर
प्रणाम-	— प्रणाम करने से
मिलितानि	— लगे हुए

	मान शक्ति रखने वाले	दैव-	— प्रारब्ध में
त्वत्-	— तुम्हारे	लिखितानि	— लिखे हुए
पादपंकज-	— चरणकमलों की	दुर्-	— बुरे
रजांसि	— धूलि के कण	अक्षरानि	— अक्षरों को
चिरं	— अनन्त काल तक	लुम्पन्ति	— मिटा देते हैं। अर्थात् सभी आपत्तियों से छुटकारा देते हैं।
जयन्ति	— जय शील रहते हैं		
यानि	— जो (धूलि के कण)		
नृणां	— (प्रणाम करने वाले)		

रे मूढाः ! किमयं वृथैव तपसा कायः परिक्लिश्यते
यज्ञैर्वा बहुदक्षिणैः किमितरे रिक्तीक्रियन्ते गृहाः।
भक्तिश्चेदऽविनाशिनी भगवतीपादद्वयी सेव्यता-
मुन्निद्राम्बुरुहातपत्रसुभगा लक्ष्मीः पुरो धावति ॥१८॥

पदच्छेदः

रे मूढाः ! किं अयं वृथा एव तपसा कायः परिक्लिष्यते ?
यज्ञैः वा बहुदक्षिणैः किं इतरे रिक्ती क्रियन्ते गृहाः ?
भक्तिःचेत् अविनाशिनी भगवती पादद्वयी सेव्यताम्
उन्निद्र अम्बुरुह आतपत्रसुभगा लक्ष्मीः पुरः धावति ॥१८॥

रे मूढाः !	— अरे मोह में डूबे हुए संसारिक पुरुषो !	(किं)	— क्यों
		क्रियन्ते	— कर देते हैं,
किं	— क्यों	चेद्	— यदि [तुम में]
तपसा	— [ज्ञानरहित] तपस्या द्वारा	(अविनाशिनी)	— अटल
		भक्तिः	— भक्ति है [तो]
अयं	— यह [अपना]	अविनाशिनी	— तीन काल में नित्य
कायः	— शरीर	भगवती	— देवी के
वृथा एव	— व्यर्थ ही	पादद्वयी	— दो चरणों की

परिक्लिष्यते	— [तुम से] कष्ट दिया जाता है[1]
वा	— अथवा
बहुदक्षिणैः	— बडी दक्षिणा वाले
यज्ञैः	— यज्ञों से
इतरे	— कुछ पुरुष
गृहाः	— [अपने] घरों को
रिक्ती	— खाली
सेव्यताम्	— सेवा कीजिये
उन्निद्र-	— [तो] खिले हुए
अम्बुरुह-	— कमल के
आतपत्र-	— छत्र से
सुभगा	— शोभायमान
लक्ष्मीः	— लक्ष्मी
पुरो	— तुम्हारे आगे २
धावति	— दौडेगी।

याचे न कंचन न कंचन वञ्चयामि
सेवे न कंचन निरस्तसमस्तदैन्यः।
श्लक्ष्णं वसे मधुरमद्मि भजे वरस्त्री-
देवी हृदि स्फुरति मे कुलकामधेनुः॥१९॥

पदच्छेदः

याचे न कंचन न कंचन वञ्चयामि
सेवे न कंचन निरस्त समस्त दैन्यः।
श्लक्ष्णं वसे मधुरं अद्मि भजे वरस्त्रीः
देवी हृदि स्फुरति मे कुलकामधेनुः॥१९॥

निरस्त-	— हटी हुई
समस्त-	— सभी
दैन्यः	— दीनताओं वाला [मैं भक्त]
कंचन	— किसी से भी
	हूं,[2]
मधुरम्	— स्वादिष्ट
अद्मि	— भोग भोगता हूं,
वरस्त्रीः	— उत्तम चित् शक्ति का

१. ज्ञान प्राप्त करने के बिना तपस्या और चान्द्रायण व्रत इत्यादि कुछ आत्मज्ञान नहीं दे सकते हैं। २. मैं चितस्वरूप हूं।

न याचे	— कुछ नहीं मांगता हूं[1]	भजे	— विमर्श करता हूं, [क्योंकि]
कंचन	— किसी को भी	कुलकामधेनुः	— सभी अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाली
न वंचयामि	— कपट से नहीं ठगता हूं,[2]	देवी	— तेजस्वी देवी
कंचन	— किसी को भी	मे	— मेरे
न सेवे	— सेवा नहीं करता हूं,	हृदि	— हृदय में
श्लक्ष्णं	— सुन्दर [बारीक]	स्फुरति	— विकसित है।
वसे	— वस्त्र धारण करता		

शब्दब्रह्ममयि ! स्वच्छे देवि त्रिपुरसुन्दरि !।
यथाशक्ति जपं पूजां गृहाण परमेश्वरि ॥२०॥

पदच्छेदः

शब्दब्रह्ममयि ! स्वच्छे ! देवि ! त्रिपुरसुन्दरि !।
यथाशक्ति जपं पूजां गृहाण परमेश्वरि !॥२०॥

शब्दब्रह्ममये	— जीव और ब्रह्म का ऐक्य कराने वाली	परमेश्वरि !	— हे परमेश्वर की स्वातन्त्र्य शक्ति !
स्वच्छे !	— हे निर्मल चित्स्वरूप	यथाशक्ति	— जैसी वैसी थोडी मेरी शक्ति है [वैसे मेरे]
देवी !	— हे सृष्टि-स्थिति-संहार रूप क्रीडा करने वाली !	जपं	— जप [और]
त्रिपुरसुन्दरि !	हे तीनों शरीरों में व्यापक !	पूजां	— पूजा को
		गृहाण	— स्वीकार कर।

नन्दन्तु साधकाः सर्वे विनश्यन्तु विदूषकाः।
अवस्था शाम्भवी मेऽस्तु प्रसन्नोऽस्तु गुरुः सदा ॥२१॥

---

१. मैं स्वतन्त्र और परिपूर्ण हूं। २. मेरे अंतः करण शुद्ध हैं।

पदच्छेदः

नन्दन्तु साधकाः सर्वे विनश्यन्तु विदूषकाः ।
अवस्था शाम्भवी मे अस्तु प्रसन्नः अस्तु गुरुः सदा ॥२१॥

सर्वे	— सभी	अवस्था	— अवस्था
साधकाः	— मोक्षसिद्धि के अभिलाषी	अस्तु	— रहे,
नन्दन्तु	— आनन्द प्राप्त करें,	गुरुः	— मेरे गुरुदेव
विदूषकाः	— दोष सहित पापीजन	सदा	— सदा व सर्वदा
विनश्यन्तु	— नष्ट हो जायें,[1]	प्रसन्नः	— मुझ पर अनुग्रह करने वाले
मे	— मुझे	अस्तु	— रहें ।
शाम्भवी	— शाम्भव [अभेदमय],		

दर्शनात्पापशमनी जपान्मृत्युविनाशिनी ।
पूजिता दुःखदौर्भाग्यहरा त्रिपुरसुन्दरी ॥२२॥

पदच्छेदः

दर्शनात् पापशमनी जपात् मृत्युविनाशिनी ।
पूजिता दुःख दौर्भाग्यहरा त्रिपुरसुन्दरी ॥२२॥

त्रिपुरसुन्दरी	— देवी त्रिपुरा		[अर्थात् जब भक्त उसकी पूजा करते हैं]
दर्शनात्	— दर्शन से	दुःख	— दुख [और]
पापशामनी	— पापों को नाश करती है,	दौर्भाग्य-	— दुर्भाग्यों को
जपात्	— जप से	हरा	— हटाने वाली [बनती है ।]
मृत्युविनाशिनी	मृत्यु का भय दूर करने वाली है,		
पूजिता	— पूजा की गई [देवी]		

१. उनकी पाप करने की प्रवृत्ति शुद्ध होकर वे भी दोष रहित हो जायें ।

नमामि यामिनीनाथलेखालङ्कृतकुन्तलाम्।
भवानीं भवसन्तापनिर्वापणसुधानदीम्॥२३॥

पदच्छेदः

नमामि यामिनी नाथ लेखा अलङ्कृत कुन्तलाम् ।
भवानीं भवसन्ताप निर्वापण सुधानदीम् ॥२३॥

यामिनीनाथ-	— चन्द्रमा की	संताप-	— दुखों को
लेखा-	— कला से	निर्वापण-	— हटाने के लिए
अलंकृत-	— शोभित	सुधानदीम्	— अमृत नदी रूप
कुन्तलाम्	— केशों वाली,	भवानीम्	— देवी को
भव-	— संसार के	नमामि	— मैं प्रणाम करता हूं।

मन्त्रहीनंक्रियाहीनं विधिहीनं च यद्गतम्।
त्वया तत्क्षम्यतां देवि ! कृपया परमेश्वरि ! ॥२४॥

पदच्छेदः

मन्त्रहीनं क्रियाहीनं विधिहीनं च यत् गतम् ।
त्वया तत् क्षम्यतां देवि ! कृपया परमेश्वरि ! ॥२४॥

मन्त्रहीनं	— मंत्र रहित,	परमेश्वरि !	— परमेश्वर की शक्ति!
क्रियाहीनं	— क्रिया रहित	त्वया	— आप
च	— और	तत्	— उस सब कुछ के लिए
विधिहीनं	— विधिरहित		
यद्	— जो कुछ	कृपया	— कृपा [करके]
गतम्	— मुझ से हुआ	क्षम्यताम्	— क्षमा करें।
देवि !	— हे देवी,		

इति श्री पञ्चस्तव्यां घटस्तवः तृतीयः ॥३॥

ॐ

अथ पञ्चस्तव्यामऽम्बस्तवश्चतुर्थः ।

ॐ यामाऽऽमनन्ति मुनयः प्रकृतिं पुराणीं
विद्ये ति यां श्रु तिरहस्यविदो वदन्ति ।
तामऽर्धपल्लवितशङ्कररूपमुद्रां
देवीमऽनन्यशरणः शरणं प्रपद्ये ॥१॥

पदच्छेदः

याम् आमनन्ति मुनयः प्रकृतिं पुराणीम्
विद्या इति यां श्रुतिरहस्य बिदः वदन्ति ।
तां अर्ध पल्लवित शङ्कररूप मुद्रां
देवीम् अनन्य शरणः शरणं प्रपद्ये ॥१॥

याम्	— जिसको	ताम्	— उसी
मुनयः	— ऋषि मुनि	अर्ध-[1]	— आधे स्वरूप के अर्पण करने से
पुराणीम्	— अनादिकाल से सिद्ध	पल्लवित-	— विकसित होकर
प्रकृतिम्	— प्रकृति	शंकररूप-	— शंकर के स्वरूप को
आमनन्ति	— कहते हैं,	मुद्रां	— मुद्रित करने वाली

१. जिसने अपना आधा स्वरूप शिव को अर्पण करके (उसे चैतन्यरूप बना कर) शक्तिमान बनाया है और उसके स्वरूप में अपनी शक्ति की मुद्रा स्थापित की है ।

याम्	— जिसको
श्रुति-	— वेदों और शास्त्रों के
रहस्य-	— सार को
विदो	— जानने वाले [ज्ञानी पुरुष]
विद्या	— शुद्ध विद्या के
इति	— नाम से
वदन्ति	— पुकारते हैं,
देवीं	— देवी को
अनन्य-	— [मैं भक्त]
शरणः	— जिसका [देवी के विना] दूसरा कोई सहारा नहीं है।
शरणं	— शरण
प्रपद्ये	— होता हूं।

अम्ब ! स्तवेषु तव तावदऽकर्तृकाणि
कुण्ठीभवन्ति वचसामऽपि गुम्फनानि।
डिम्बस्य मे स्तुतिरसावऽसमञ्जसापि
वात्सल्यनिघ्नहृदयां भवतीं धिनोति ॥२॥

पदच्छेदः

अम्ब ! स्तवेषु तव तावत् अकर्तृकाणि
कुण्ठीभवन्ति वचसाम् अपि गुम्फनानि ।
डिम्बस्य मे स्तुतिः असौ असमञ्जसा अपि
वात्सल्य निघ्नहृदयां भवतीं धिनोति ॥२॥

अम्ब !	— हे माता !
तव	— तुम्हारी
स्तवेषु	— स्तुति करने में
तावत्	— तो
वचसां	— वेदों की
गुम्फनानि	— सुन्दर रचनायें [वाक्य]
	(तो भी)
मे	— मुझ
डिम्बस्य	— मूर्ख की
असौ	— यह
स्तुतिः	— स्तुति
असमंजसापि	— [यद्यपि] अयुक्त भी है

अकर्तृकाणि — जिनका [परमेश्वर के विना] कोई कर्ता नहीं है,
कुण्ठी — कुण्ठित
भवन्ति — हो जाती हैं,
वात्सल्यनिघ्न- — स्नेह भरे
हृदयां — हृदय वाली
भवतीं — आप [माता] को
धिनोति — प्रसन्न करती है।

व्योमेति बिन्दुरिति नाद इतीन्दुलेखा-
रूपेति वाग्भवतनूरिति मातृकेति।
निःष्यन्दमानसुखबोधसुधास्वरूपा
विद्योतसे मनसि भाग्यवतां जनानाम् ॥३॥

पदच्छेदः

व्योम इति बिन्दुः इति नादः इति इन्दुलेखा-
रूपा इति वाक्भवतनूः इति मातृका इति।
निःष्यन्दमान सुखबोध सुधा स्वरूपा
विद्योतसे मनसि भाग्यवतां जनानाम् ॥३॥

व्योम इति — चिदाकाश,
बिन्दुः इति — ज्ञान,
नादः इति — विज्ञान,
इन्दुलेखा-रूपा इति — चन्द्रमा की कला रूप,
वाक्- — वाणियों के
भवतनूः इति — उत्पत्ति स्थान रूप
मातृका इति — माता रूप (और)
निःष्यन्दमान- — निकलते हुए
सुख- — आनन्द, (और)
बोध- — ज्ञान रूप
सुधा- — अमृत के
स्वरूपा — स्वरूप वाली (हे देवी! आप)
भाग्यवतां — भाग्यवान्
जननां — (भक्त) जनों के
मनसि — मन में
विद्योतसे — विकसित (प्रकट) होती हो।

आविर्भवत्पुलकसन्ततिभिः शरीरै-
र्निःष्यन्दमानसलिलैर्नयनैश्च नित्यम् ।
वाग्भिश्च गद्गदपदाभिरुपासते ये
पादौ तवाम्ब ! हृदयेषु त एव धन्याः ॥४॥

पदच्छेदः

आविर्भवत् पुलकसन्ततिभिः शरीरैः
निःष्यन्दमान सलिलैः नयनैः च नित्यम् ।
वाग्भिः च गद्गदपदाभिः उपासते ये
पादौ तव अम्ब ! हृदयेषु ते एव धन्याः ॥४॥

अम्ब !	— हे माता !	ये	— जो [भक्तवर]
आविर्भत्-	— प्रकट बने हुए	तव	— तुम्हारे
पुलक-	— रोमांचों की	पादौ	— चरणों को
सन्ततिभिः	— पंक्तियों से युक्त	नित्यम्	— निरन्तर
शरीरैः	— शरीरों से,	हृदयेषु	— अपने हृदयों में
निःष्यन्दमान-	— बहते हुए	उपासते	— पूजते हैं [मन में धारण करते हैं]
सलिलैः	— जल से युक्त (अश्रु धारा भरे)	त एव	— वे ही [भक्त]
नयनैः	— नेत्रों से,	धन्याः	— श्लाध्य हैं अर्थात् आप से एकता प्राप्त करने के अधिकारी बनते हैं ।
च	— और		
गद्गदपदाभिः	— गद्गद शब्दों वाली [हिचकी बन्धे हुए]		
वाग्भिः	— वाणियों से		

वक्त्रं यदुद्यतमऽभिष्टुतये भवत्या-
स्तुभ्यं नमो यदपि देवि ! शिरः करोति ।

चेतश्च यत्त्वयि परायणमम्ब ! तानि
कस्यापि कैरपि भवन्ति तपोविशेषैः ॥५॥

पदच्छेदः

वक्त्रं यत् उद्यतम् अभिष्टुतये भवत्याः
तुभ्यम् नमः यत् अपि देवि ! शिरः करोति ।
चेतः च यत् त्वयि परायणम् अम्ब ! तानि
कस्य अपि कैः अपि भवन्ति तपः विशेषैः ॥५॥

देवि !	— हे देवी !	चेतः च	— और [ऐसा] मन
वक्त्रं	— [ऐसा] मुख	यत्	— जो
यत्	— जो	त्वयि	— आप में [आपके वि-मर्श में]
भवत्याः	— आपकी	परायणम्	— लीन हो,
अभिष्टुतये	— बार बार स्तुति करने के लिए	अम्ब !	— हे माता !
उद्यतम्	— उद्योग युक्त हो,	तानि	— यह [तीनों बातें]
शिरः	— [ऐसा] सिर	कस्यापि	— किसी ही विरले [भक्त] को
अपि	— भी	कैरपि	— किन्ही
यत्	— जो	तपो विशेषैः	— उत्तम तपों [के बल] से
तुभ्यं	— आपको	भवन्ति	— [प्राप्त] होती हैं।
नमः	— नमस्कार		
करोति	— करता हो		

मूलालवालकुहरादुदिता भवानि !
निर्भिद्य षट्सरसिजानि तडिल्लतेव ।
भूयोऽपि तत्र विशसि ध्रुवमण्डलेन्दु-
निःष्यन्दमानपरमामृततोयरूपा ॥६॥

पदच्छेदः

मूल आलवाल कुहरात् उदिता भवानि !
निर्भिद्य षट् सरसिजानि तडित् लता इव ।
भूयः अपि तत्र विशसि ध्रुवमण्डल इन्दु-
निःष्यन्दमान परम अमृत तोयरूपा ॥६॥

भवानि !	— हे देवी,
मूलालवाल-कुहरात्	— मूलाधार के रन्ध्र से
उदिता	— उदय में आई हुई
षट	— छः
सरसिजानि[1]	— कमलों को
तडित लता	— बिजली की कडक
इव	— की तरह
निर्भिद्य	— फाडकर
भूयः अपि	— फिर
ध्रुवमंडलेन्दु-	— निश्चल मण्डल वाले चन्द्रमा[अमा कला] से
निःष्यन्दमान-	— प्रवाहरूप में निकलते हुए
परमामृत-	— उत्कृष्ट चित् अमृत के
तोयरूपा	— जलरूप
तत्र	— उसी मूलाधार में
विशसि	— प्रवेश करती हो ।

दग्धं यदा मदनमेकमऽनेकधा ते
मुग्धः कटाक्षविधिरङ्कुरयांचकार।
धत्ते तदाप्रभृति देवि ! ललाटनेत्रं
सत्यं ह्रियेव मुकलीकृतमिन्दुमौलिः ॥७॥

पदच्छेदः

---

१. मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र तक छः स्थान
अर्थात् नाभि, हृदय, कण्ठ, तालु, भ्रूमध्य तथा ब्रह्मरन्ध्र।

दग्धं यदा मदनम् एकम् अनेकधा ते
मुग्धः कटाक्ष विधिः अङ्कुरयांचकार ।
धत्ते तदा प्रभृति देवि ! ललाटनेत्रम्
सत्यं ह्रिया इव मुकुली कृतम् इन्दुमौलिः ॥७॥

देवि !	— हे देवी !
यदा	— जब
ते	— तुम्हारी
मुग्धः	— मनोहर
कटाक्षविधिः	— नेत्रों की दृष्टि
एकम्	— अकेले
दग्धं	— जले हुए
मदनम्	— कामदेव को
अंकुरयां-	— अंकुर-
चकार	— निकालने लगी अर्थात् उसे पुनः जीवित करने लगी
तदा प्रभृति	— तब से
इन्दुमौलिः	— शंकर
ललाट-	— माथे के
नेत्रं	— नेत्र को
सत्यं	— सचमुच ही
ह्रिया	— लज्जा के मारे
मुकली कृतम्	— बन्द किये हुए
इव	— जैसा
धत्ते	— धारण करता है ।

**अज्ञातसम्भवमनाकलितान्ववायं
भिक्षुं कपालिनमवाससमद्वितीयम् ।
पूर्वं करग्रहणमङ्गलतो भवत्याः
शम्भुं क एव बुबुधे गिरिराजकन्ये ॥८॥**

पदच्छेदः

अज्ञातसम्भवम् अनाकलित अन्ववायं
भिक्षुं कपालिनम् अवाससम् अद्वितीयम् ।
पूर्वं करग्रहणमङ्गलतः भवत्याः
शम्भुं कः एव बुबुधे गिरिराज कन्ये ! ॥८॥

गिरिराजकन्ये !	हे पार्वती !		दूसरा नहीं,
अज्ञात् संभवम्	जिसके माता पिता ही विदित नहीं,	शम्भुं	— [ऐसे] शंकर को
अनाकलित-अन्ववायं	— { जिसका कुल ही किसी को मालूम नहीं,	भवत्याः	— आपके साथ
		करग्रहण-	— पाणिग्रहण [विवाह] रूप
		मंगलतो	— कल्याण से
भिक्षुं	— भिक्षा करने वाले,	पूर्वं	— पहले
कपालिनं	— कपालधारी,	कः एव	— भला कौन
अवाससम्	— नंगे [वस्त्रहीन] (तथा)	बुबुधे	— जानता था ? अर्थात् कोई भी नही जानता था।
अद्वितीयम्	— जिसके जैसा कोई		

चर्माम्बरं च शवभस्मविलेपनं च
भिक्षाटनं च नटनं च परेतभूमौ।
वेतालसंहृतिपरिग्रहता च शम्भोः
शोभां बिभर्ति गिरिजे ! तव साहचर्यात् ॥९॥

पदच्छेदः

चर्म अम्बरं च शवभस्म विलेपनं च
भिक्षा अटनं च नटनं च परेत भूमौ।
वेताल संहृति परिग्रहता च शम्भोः
शोभां बिभर्ति गिरिजे तव साहचर्यात् ॥९॥

शम्भोः	— शिव का		के समूह का
चर्माम्बरं च	— मृगछाला इत्यादि वस्त्र पहनना,	परिग्रहता	— कुटुम्ब रूप होना (यह उसकी सब बातें)
शवभस्म-	— मुर्दों का भस्म		

विलेपनं च	— शरीर पर मलना,	गिरिजे !	— हे पार्वति !
भिक्षाटनम् च	— और भिक्षा के लिए घूमना,	तव	— तुम्हारे (उस शिव के)
परेत भूमौ	— प्रेतों की भूमि में	साहचर्यात्	— साथ चलने से
नटनं	— नाचना,	शोभां	— शोभा को
च	— तथा	बिभर्ति[1]	— धारण करती है।
वेतालसंहति-	— वेतालभैरव इत्यादि		

कल्पोपसंहरणकेलिषु पण्डितानि
चण्डानि खण्डपरशोरपि ताण्डवानि।
आलोकनेन तव कोमलितानि मात-
र्लास्यात्मना परिणमन्ति जगद्विभूत्यै ॥१०॥

पदच्छेदः

कल्प उपसंहरण केलिषु पण्डितानि
चण्डानि खण्डपरशोः अपि ताण्डवानि।
आलोकनेन तव कोमलितानि मातः !
लास्यात्मना परिणमन्ति जगत् विभूत्यै ॥१०॥

मातः !	— हे माता !	ताण्डवानि	— ताण्डव नृत्य
कल्प-	— कल्प के	अपि	— भी
उपसंहरण-	— संहार करने की	तव	— तुम्हारी
केलिषु	— क्रीडाओं में	लास्यात्मना	— सृष्टिकारक नाचरूप

१. शंकर का यह सब व्यवहार, अर्थात् नंगा रहना, भस्म मलना, भिक्षा मांगना इत्यादि जो सांसारिक दृष्टि से निन्दित है, देवी के उसके साथ होने से उसके (शंकर के) प्रभाव को बढाता है।

खण्डपरशोः	— कुल्हाडा जिसका आयुध है (ऐसे शंकर के)	आलोकनेन	— दृष्टि मात्र से
पण्डितानि	— निपुण (तथा)	कोमलितानि	— कोमल बनकर
चण्डानि	— अति तीक्ष्ण	जगत्-	— जगत के
		विभूत्यै	— ऐश्वर्य के लिए
		परिणमन्ति	— परिणत हो जाते हैं।

जन्तोरपश्चिमतनोः सति कर्मसाम्ये
निःशेषपाशपटलच्छिदुरा निमेषात्।
कल्याणि! दैशिककटाक्षसमाश्रयेण
कारुण्यतो भवसि शाम्भववेददीक्षा ॥११॥

पदच्छेदः

जन्तोः अपश्चिमतनोः सति कर्मसाम्ये
निःशेष पाशपटलच्छिदुरा निमेषात्।
कल्याणि! दैशिक कटाक्षसम् आश्रयेण
कारुण्यतः भवसि शाम्भव वेददीक्षा ॥११॥

कल्याणि!	— हे कल्याणरूपिणी!	समाश्रयेण	— आश्रय लेने से
अपश्चिमतनोः	— जीवन्मुक्त[1] बनने वाले	निमेषात्	— क्षणमात्र में
जन्तोः	— जीवधारी को	निःशेष-	— सभी
कर्मसाम्ये	— पुण्य और पाप कर्मों की समता	पाश-	— पाशों के
सति	— हो जाने पर	पटल-	— समूहों को
कारुण्यतो	— दया से	च्छिदुरा	— काटने वाली
दैशिक-	— सद्गुरु की	शाम्भव वेद-	— शैव शास्त्रों की
		दीक्षा	— रहस्य उपदेश करने

१. जिसे इस शरीर के पश्चात् कोई दूसरा शरीर धारण नहीं करता है।

कटाक्ष	— अनुग्रह की दृष्टि का		वाली
		भवसि	— (तुम) बनती हो।

मुक्ताविभूषणवती नवविद्रुमाभा
यच्चेतसि स्फुरसि तारकितेव सन्ध्या।
एकः स एव भुवनत्रयसुन्दरीणां
कन्दर्पतां व्रजति पञ्चशरीं विनापि ॥१२॥

पदच्छेदः

मुक्ता विभूषणवती नवविद्रुमग्राभा-
यत् चेतसि स्फुरसि तारकिता इव सन्ध्या।
एकः स एव भुवनत्रय सुन्दरीणां
कन्दर्पतां व्रजति पञ्चशरीम् विना अपि ॥१२॥

मुक्ता-	— मोतियों के		कराती हो)
विभूषणवती	— भूषणों से सुशोभित,	स एकः एव	— वही एक (भक्त)
नवविद्रुम-	— नये रुद्राक्ष की	भुवनत्रय-	— तीनों भुवनों का
ग्राभा	— दीप्ति वाली (ग्राप)		(शासन करने वा-
यत्	— जिस (भक्त) के		ली)
चेतसि	— मन में	सुन्दरीणां	— उत्तम शक्तियों के
तारकिता	— तारों से भरी हुई	कन्दर्पतां	— कामदेवपन को[1]
सन्ध्या	— सन्ध्या	पंचशरीं	— पांच बाणों के (धा-
इव	— जैसी		रण किये)
स्फुरसि	— विकास में ग्राती हो	विनापि	— विना ही
	(ग्रपना साक्षात्कार	व्रजति	— प्राप्त होता है।

१. जिस प्रकार कामदेव के ग्रावेश से युवतियां मोहित हो जाती हैं, उसी प्रकार उत्कृष्ट शक्तियां भी उत्तम भक्त के वश में हो जाती हैं।

ये भावयन्त्यमृतवाहिभिरंशुजालै-
राप्यायमानभुवनाममृतेश्वरीं त्वाम्।
ते लङ्घयन्ति ननु मातरऽलङ्घनीयां
ब्रह्मादिभिः सुरवरैरपि कालकक्ष्याम्॥१३॥

पदच्छेदः

ये भावयन्ति अमृत वाहिभिः अंशुजालैः
आप्यायमान भुवनाम् अमृत ईश्वरीम् त्वाम्।
ते लङ्घयन्ति ननु मातः! अलङ्घनीयाम्
ब्रह्मादिभिः सुरवरैः अपि कालकक्ष्याम् ॥१३।

ये	— जो [भक्त]	ते	— वे [सभी]
त्वां	— तुझ	ब्रह्मादिभिः	— ब्रह्मा इत्यादि
अमृतवाहिभिः	— अमृत बहाने वाले	सुरवरैः	— श्रेष्ठ देवताओं से
अंशुजालैः	— किरणों के समूह से	अपि	— भी
आप्यायमान भुवनाम्	[तीनों] भुवनों का सींचन करने वाली	अलङ्घनीयां	— पार करने में अति कठिन
अमृतेश्वरीं	— अमृत की स्वामिनी की	काल-	— काल [भूत, वर्तमान भविष्य]
भावयान्ति	— भावना करते हैं, [एकाग्र चित से ध्यान करते हैं]	कक्ष्यां	— कलना को
		ननु	— निश्चय ही
		लङ्घयन्ति	— पार कर जाते हैं।
मातः!	— हे मातः!		

यः स्फाटिकाक्षगुणपुस्तककुण्डिकाढ्यां
व्याख्यासमुद्यतकरां शरदिन्दुशुभ्राम्।

पद्मासनां च हृदये भवतीमुपास्ते
मातः स विश्वकवितार्किकचक्रवर्ती ॥१४॥

पदच्छेद: यः स्फटिक अक्ष गुण पुस्तक कुण्डिका आढ्यां व्याख्या सम् उद्यत करां शरत् इन्दु शुभ्राम्। पद्म आसनां च हृदये भवतीम् उपास्ते मातः ! स विश्व कवि तार्किक चक्रवर्ती ॥१४॥

मातः !	— हे माता !
यः	— जो [भक्त]
स्फटिक-	— स्फटिकमणि की
अक्ष-	— अक्षमाला,
गुण-	— रस्सी [पाश],
पुस्तक-	— पुस्तक, [तथा]
कुण्डिक-	— कूंडी [कमण्डल] से
आढ्यां	— शोभित [तथा]
व्याख्या-	— उपदेश करने के लिए
समुद्यत-	— उठाये हुए
करां	— हाथ वाली,
शरद्-	— शरद ऋतु के
इन्दु-	— चन्द्रमा [जैसी]
शुभ्रां	— तेज वाली
च	— और
पद्मासनां	— कमल के आसन पर बैठी हुई
भवतीं	— आपकी
हृदये	— हृदय में
उपास्ते	— उपासना करता है
स	— वह
विश्व-	— सभी जगत के
कवि-	— कवियों [और]
तार्किक-	— तर्क के जानने वालों में
चक्रवर्ती	— सब से उत्तम बन जाता है।

बर्हावतंसयुतबर्बरकेशपाशां
गुञ्जावलीकृतघनस्तनहारशोभाम्।

تھی۔ اور دیکھنے کے سمان لال روپ بنا ہوا تھا۔ اور اس کے
ہاتھ بہت کومل ہے۔ بھکتی دیا روپ ہاتھ والی تھی۔ میں آپ
(شکارن کی پرنام) کرتا ہوں۔

श्यामां प्रवालवदनां सुकुमारहस्तां
त्वामेव नौमि शवरीं शवरस्य जायाम् ॥१५॥

पदच्छेदः

बर्ह् अवतंस युत बर्बर केश पाशाम्
गुञ्जा अवली कृत घन स्तन हार शोभाम् ।
श्यामां प्रवालवदनां सुकुमार हस्ताम्
त्वां एव नौमि शवरीं शवरस्य जायाम् ॥१५॥

बर्ह्-	— मोर पंख के	शोभां	— शोभा वाली,
अवतंस-	— ताज से	श्यामां	— श्याम वर्ण,
युत-	— युक्त	प्रवाल-	— मूंगे जैसे (लाल)
बर्बर-	— बर्बर कश्मीरी बबर जैसे (कोमल और चमकदार)	वदनां	— मुख वाली,
		सुकुमार-	— कोमल[1]
		हस्तां	— हाथों वाली, [ऐसी]
केशपाशां	— बालों वाली,	त्वामेव	— तुझे ही
गुंजावली-	— गुंजाहारों से	शवरीं	— शवरी[2]
कृत-	— किये हुए	शवरस्य	— शंकर की
घनस्तन-	— घने स्तनों पर	जायां	— शक्ति को
हार-	— हारों की	नौमि	— मैं शरण लेता हूं ।

अर्धेन किं नवलताललितेन मुग्धे !
क्रीतं विभोः परुषमर्धमिदं त्वयेति ।

---

१. अथवा हाथों में कुमार अर्थात् कार्तिक स्वामि लिया है जिसने ।
२. शिकारिन के रूप में शिव की शक्ति ।

आलीजनस्य परिहासवचांसि, मन्ये
मन्दस्मितेन तव देवि ! जडी भवन्ति ॥१६॥

पदच्छेदः

अर्धेन किं नवलताललितेन मुग्धे !
क्रीतं विभोः परुषम् अर्धं इदं त्वया इति ।
आली जनस्य परिहास वचांसि मन्ये
मन्द स्मितेन तव देवि ! जडी भवन्ति ॥१६॥

मुग्धे !	— हे सुन्दरी ! पार्वती!	इति	— इस प्रकार के
किं त्वया	— क्यों तूने	आलीजनस्य	— सखियों के
नवलता-	— नई लता [जैसे कोमल और सुन्दर]	परिहास-	— हंसी के
ललितेन-	— (तथा) प्रेम से पाले हुए	वचांसि	— वचन
अर्धेन-	— अपने आधे शरीर के बदले	देवि !	— हे देवी !
विभोः	— शिव का	तव	— आपकी
इद	— यह	मन्द-	— कोमल (मन को हरने वाली)
परुषम्	— कठिन [खुरदुरा]	स्मितेन	— मुस्कराहट से
अर्धं	— आधा शरीर	मन्ये	— मेरी समझ में
क्रीत	— मोल लिया ?	जडी	— जड
		भवन्ति	— बन जाते हैं[1] ।

ब्रह्माण्ड बुद्बुदकदम्बकसंकुलोऽयं
मायोदधिर्विविधदुःखतरङ्गमालः ।

---

१. अर्थात् देवी के अन्तर्मुख होने से ही सहेलियां (इन्द्रिय शक्तियां) जड (सत्ता हीन) हो जाती हैं ।

आश्चर्यमम्ब ! झटिति प्रलयं प्रयाति
त्वद्ध्यानसन्ततिमहावडवामुखाग्नौ ॥१७॥

पदच्छेदः

ब्रह्माण्ड बुद्बुद कदम्बक सङ्कुलः अयम्
माया उदधिः विविध दुःख तरङ्ग मालः ।
आश्चर्यं अम्ब ! झटिति प्रलयं प्रयाति
त्वत् ध्यान सन्तति महा वडवा मुख अग्नौ ॥१७॥

अम्ब !	— हे माता !	महा-	— बडे
अयं	— यह	वडवामुख-अग्नौ	— वाडव अग्नि में
ब्रह्माण्ड-	— अनेकों ब्रह्माण्डरूप	झटिति	— क्षणमात्र में (ध्यान करते हो)
बुद्बुद-	— बुलबलों के		
कदम्बक-	— अगणित समूहों से	प्रलयं	— लय भाव को
संकुलो	— ग्रस्त व्यस्त	प्रयाति	— प्राप्त होता है [अर्थात माया सागर का संहार हो जाता है)
माया-	— माया रूपी		
उदधिः	— सागर		
विविध-	— नाना प्रकार के		
दुखतरंग-मालः	— दुख की तरंगों से भरा हुआ	आश्चर्यम्	— यह बडे आश्चर्य की बात है।
त्वत्-	— तुम्हारे		
ध्यान-सन्तति-	— निरन्तर ध्यान रूपी		

दाक्षायणीति कुटिलेति गुहारणीति
कात्यायनीति कमलेति कलावतीति।

एका सती भगवती परमार्थतोऽपि
संदृश्यसे बहुविधा ननु नर्तकीव ॥१८॥

पदच्छेदः

दाक्षायणी इति कुटिला इति गुहारणी इति
कात्यायनी इति कमला इति कलावती इति ।
एका सती भगवती परमार्थतः अपि
संदृश्यसे बहुविधा ननु नर्तकी इव ॥१८॥

भगवती	— ऐश्वर्य शालिनी भगवती	कमला इति	— लक्ष्मी रूप अथवा कमल रूप संकोच विकासमय [सृष्टि संहार करने वाली]
परमार्थतः	— सच्चे स्वरूप से		
एका	— एक ही (अद्वितीय)		
सती अपि	— होती हुई भी	कलावती इति[1]	कलाओं युक्त ऐसे ऐसे
दाक्षायणी इति	दक्ष प्रजापति की बेटी,	ननु	— निश्चय रूप से
कुटिला इति	— टेढ़ा चलने वाली कुण्डलिनी रूप,	नर्तकी इव	— नाचने वाली स्त्री की तरह
गृहारणी इति	— हृदय रूपी गुफाओं में वास करने वाली,	बहुविधा	— अनेकों प्रकार से
कात्यायनी	— कात्यायन ऋषि की पुत्री,	संदृश्यसे	— दीखती हो [अनेकों रूप धारण करती हो।)

आनन्दलक्षणमनाहतनाम्नि देशे
नादात्मना परिणतं तव रूपमीशे।

---

१. चन्द्रमा की १६ कला, शिव से पृथिवी तक ३६ तत्त्व रूप कला, अकार से हकार तक वर्णमाला रूप ५० कला।

ये भावयन्त्यमृतवाहिभिरंशुजालै-
राप्यायमानभुवनाममृतेश्वरीं त्वाम्।
ते लङ्घयन्ति ननु मातरऽलङ्घनीयां
ब्रह्मादिभिः सुरवरैरपि कालकक्ष्याम्॥१३॥

पदच्छेदः

ये भावयन्ति अमृत वाहिभिः अंशुजालैः
आप्यायमान भुवनाम् अमृत ईश्वरीम् त्वाम्।
ते लङ्घयन्ति ननु मातः ! अलङ्घनीयाम्
ब्रह्मादिभिः सुरवरैः अपि कालकक्ष्याम् ॥१३।

ये	— जो [भक्त]	ते	— वे [सभी]
त्वां	— तुझ	ब्रह्मादिभिः	— ब्रह्मा इत्यादि
अमृतवाहिभिः	— अमृत बहाने वाले	सुरवरैः	— श्रेष्ठ देवताओं से
अंशुजालैः	— किरणों के समूह से	अपि	— भी
आप्यायमान भुवनाम्	[तीनों] भुवनों का सींचन करने वाली	अलङ्घनीयां	— पार करने में अति कठिन
अमृतेश्वरीं	— अमृत की स्वामिनी की	काल-	— काल [भूत, वर्तमान भविष्य]
भावयान्ति	— भावना करते हैं, [एकाग्र चित से ध्यान करते हैं]	कक्ष्यां	— कलना को
		ननु	— निश्चय ही
		लङ्घयन्ति	— पार कर जाते हैं।
मातः !	— हे मातः !		

यः स्फाटिकाक्षगुणपुस्तककुण्डिकाढ्यां
व्याख्यासमुद्यतकरां शरदिन्दुशुभ्राम्।

पद्मासनां च हृदये भवतीमुपास्ते
मातः स विश्वकवितार्किकचक्रवर्ती ॥१४॥

पदच्छेदः

यः स्फाटिक अक्ष गुण पुस्तक कुण्डिका आढ्यां
व्याख्या सम् उद्यत करां शरत् इन्दु शुभ्राम् ।
पद्म आसनां च हृदये भवतीम् उपास्ते
मातः ! स विश्व कवि तार्किक चक्रवर्ती ॥१४॥

मातः !	— हे माता !	शुभ्रां	— तेज वाली
यः	— जो [भक्त]	च	— और
स्फाटिक-	— स्फटिकमणि की	पद्मासनां	— कमल के आसन पर बैठी हुई
अक्ष-	— अक्षमाला,	भवतीं	— आपकी
गुण-	— रस्सी [पाश],	हृदये	— हृदय में
पुस्तक-	— पुस्तक, [तथा]	उपास्ते	— उपासना करता है
कुण्डक-	— कूडी [कमण्डल]से	स	— वह
आढ्यां	— शोभित [तथा]	विश्व-	— सभी जगत के
व्याख्या-	— उपदेश करने के लिए	कवि-	— कवियों [और]
समुद्यत-	— उठाये हुए	तार्किक-	— तर्क के जानने वालों में
करां	— हाथ वाली,		
शरद्-	— शरद ऋतु के	चक्रवर्ती	— सब से उत्तम बन जाता है।
इन्दु-	— चन्द्रमा [जैसी]		

बर्हावतंसयुतबर्बरकेशपाशां
गुञ्जावलीकृतघनस्तनहारशोभाम्।

श्यामां प्रवालवदनां सुकुमारहस्तां
त्वामेव नौमि शवरीं शवरस्य जायाम् ॥१५॥

पदच्छेदः

बर्ह अवतंस युत बर्बर केश पाशाम्
गुञ्जा अवली कृत घन स्तन हार शोभाम् ।
श्यामां प्रवालवदनां सुकुमार हस्ताम्
त्वां एव नौमि शवरीं शवरस्य जायाम् ॥१५॥

बर्ह-	— मोर पंख के	शोभां	— शोभा वाली,
अवतंस-	— ताज से	श्यामां	— श्याम वर्ण,
युत-	— युक्त	प्रवाल-	— मूंगे जैसे (लाल)
बर्बर-	— बर्बर कश्मीरी बबर जैसे (कोमल और चमकदार)	वदनां	— मुख वाली,
		सुकुमार-	— कोमल[1]
		हस्तां	— हाथों वाली, [ऐसी]
केशपाशां	— बालों वाली,	त्वामेव	— तुझे ही
गुंजावली-	— गुंजाहारों से	शवरीं	— शवरी[2]
कृत-	— किये हुए	शवरस्य	— शंकर की
घनस्तन-	— घने स्तनों पर	जायां	— शक्ति को
हार-	— हारों की	नौमि	— मैं शरण लेता हूं ।

अर्धेन किं नवलताललितेन मुग्धे !
क्रीतं विभोः परुषमर्धमिदं त्वयेति ।

---

१. अथवा हाथों में कुमार अर्थात् कार्तिक स्वामि लिया है जिसने ।
२. शिकारिन के रूप में शिव की शक्ति ।

आलीजनस्य परिहासवचांसि, मन्ये
मन्दस्मितेन तव देवि ! जडी भवन्ति ॥१६॥

पदच्छेद:

अर्धेन किं नवलताललितेन मुग्धे !
क्रीतं विभो: परुषम् अर्धं इदं त्वया इति ।
आली जनस्य परिहास वचांसि मन्ये
मन्द स्मितेन तव देवि ! जडी भवन्ति ॥१६॥

मुग्धे !	— हे सुन्दरी ! पार्वती!	इति	— इस प्रकार के
किं त्वया	— क्यों तूने	आलीजनस्य	— सखियों के
नवलता-	— नई लता [जैसे कोमल और सुन्दर]	परिहास-	— हंसी के
ललितेन-	— (तथा) प्रेम से पाले हुए	वचांसि	— वचन
		देवि !	— हे देवी !
		तव	— आपकी
अर्धेन-	— अपने आधे शरीर के बदले	मन्द-	— कोमल (मन को हरने वाली)
विभो:	— शिव का	स्मितेन	— मुस्कराहट से
इद	— यह	मन्ये	— मेरी समझ में
परुषम्	— कठिन [खुरदुरा]	जडी	— जड
अर्धं	— आधा शरीर	भवन्ति	— बन जाते हैं[1] ।
क्रीत	— मोल लिया ?		

ब्रह्माण्ड बुद्बुद कदम्बकसंकुलोऽयं
मायोदधिर्विविधदुःखतरङ्गमालः ।

१. अर्थात् देवी के अन्तर्मुख होने से ही सहेलियां (इन्द्रिय शक्तियां) जड (सत्ता हीन) हो जाती हैं ।

आश्चर्यमम्ब ! झटिति प्रलयं प्रयाति

त्वद्ध्यानसन्ततिमहावडवामुखाग्नौ ॥१७॥

पदच्छेदः

ब्रह्माण्ड बुद्बुद कदम्बक सङ्कुलः अयम्
माया उदधिः विविध दुःख तरङ्ग मालः ।
आश्चर्यं अम्ब ! झटिति प्रलयं प्रयाति
त्वत् ध्यान सन्तति महा वडवा मुख अग्नौ ॥१७॥

अम्ब !	— हे माता !	महा-	— बडे
अयं	— यह	वडवामुख- अग्नौ	— { वाडव अग्नि में
ब्रह्माण्ड-	— अनेकों ब्रह्माण्डरूप	झटिति	— क्षणमात्र में (ध्यान करते हो)
बुद्बुद-	— बुलबलों के	प्रलयं	— लय भाव को
कदम्बक-	— अगणित समूहों से	प्रयाति	— प्राप्त होता है [अर्थात माया सागर का संहार हो जाता है)
संकुलो	— अस्त व्यस्त	आश्चर्यम्	— यह बडे आश्चर्य की बात है।
माया-	— माया रूपी		
उदधिः	— सागर		
विविध-	— नाना प्रकार के		
दुखतरंग- मालः	— { दुख की तरंगों से भरा हुआ		
त्वत्-	— तुम्हारे		
ध्यान- सन्तति-	— { निरन्तर ध्यान रूपी		

दाक्षायणीति कुटिलेति गुहारणीति

कात्यायनीति कमलेति कलावतीति।

एका सती भगवती परमार्थतोऽपि
संदृश्यसे बहुविधा ननु नर्तकीव ॥१८॥

पदच्छेदः

दाक्षायणी इति कुटिला इति गुहारणी इति
कात्यायनी इति कमला इति कलावती इति ।
एका सती भगवती परमार्थतः अपि
संदृश्यसे बहुविधा ननु नर्तकी इव ॥१८॥

भगवती	— ऐश्वर्य शालिनी भगवती	कमला इति	— लक्ष्मी रूप अथवा कमल रूप संकोच विकासमय [सृष्टि संहार करने वाली]
परमार्थतः	— सच्चे स्वरूप से		
एका	— एक ही (अद्वितीय)		
सती अपि	— होती हुई भी	कलावती इति[1]	कलाओं युक्त ऐसे ऐसे
दाक्षायणी इति	दक्ष प्रजापति की बेटी,	ननु	— निश्चय रूप से
कुटिला इति	— टेढ़ा चलने वाली कुण्डलिनी रूप,	नर्तकी इव	— नाचने वाली स्त्री की तरह
गुहारणी इति	— हृदय रूपी गुफाओं में वास करने वाली,	बहुविधा	— अनेकों प्रकार से
कात्यायनी	— कात्यायन ऋषि की पुत्री,	संदृश्यसे	— दीखती हो [अनेकों रूप धारण करती हो।)

आनन्दलक्षणमनाहतनाम्नि देशे
नादात्मना परिणतं तव रूपमीशे ।

१. चन्द्रमा की १६ कला, शिव से पृथिवी तक ३६ तत्त्व रूप कला, अकार से हकार तक वर्णमाला रूप ५० कला ।

प्रत्यङ्‌ मुखेन मनसा परिचीयमानं
शंसन्ति नेत्रसलिलैः पुलकैश्च धन्याः ॥१६॥

पदच्छेदः

आनन्दलक्षणम् अनाहतनाम्नि देशे
नाद आत्मना परिणतं तव रूपम् ईशे !
प्रत्यक् मुखेन मनसा परिचीयमानं
शंसन्ति नेत्र सलिलैः पुलकैः च धन्याः ॥१९॥

ईशे !	— हे ऐश्वर्यस्वरूपिणी !	नादात्मना	— नादरूप से [अक्षरों का मूल रूप]
धन्याः	— श्लाध्य और उत्तम भक्त	परिणतं	— परिणाम में आया हुआ [तथा]
तव	— तुम्हारे	प्रत्यङ्मुखेन	— सन्मुख रूप वाले
आनन्द-	— आनन्द ही	मनसा	— मन से
लक्षणं	— लक्षण है जिसका [ऐसे तुम्हारे]	परिचीयमानं	— बढाया हुआ,
रूपं	— रूप को	नेत्रसलिलैः	— आंसुओं की अश्रु धाराओं
अनाहत-	— अनाहत [मध्यमा वाक्]	च	— तथा
नाम्नि	— नाम वाले	पुलकैः	— रोम हर्षों द्वारा
देशे	— स्थान पर	शंसन्ति	— जतलाते हैं ।

त्वं चन्द्रिका शशिनि तिग्मरुचौ रुचिस्त्वं
त्वं चेतनासि पुरुषे पवने बलं त्वम् ।
त्वं स्वादुतासि सलिले शिखिनि त्वमूष्मा
निःसारमेव निखिलं त्वदृते यदि स्यात् ॥२०॥

بنا پڑھتا تو سب کچھ نہیں ہوتا

पदच्छेदः

त्वं चन्द्रिका शशिनि तिग्मरुचौ रुचिः त्वं
त्वं चेतना असि पुरुषे पवने बलं त्वं
त्वं स्वादुता असि सलिले शिखिनि त्वं ऊष्मा
निःसारम् एव निखिलं त्वत् ऋते यदि स्यात् ॥२०॥

त्वम्	— तुम	त्वम्	— तुम
शशिनि	— चन्द्रमा में	सलिले	— जल में
चन्द्रिका	— चान्दनी [प्रकाश रूप हो],	स्वादुता	— रस [रूप]
		असि	— हो,
त्वम्	— तुम	त्वम्	— तुम
तिग्मरुचौ	— सूर्य में	शिखिनि	— अग्नि में
रुचिः	— दीप्ति [विमर्श रूप हो],	उष्मा	— गर्मी [हो],
		यदि	— यदि
त्वम्	— तुम	त्वदृते	— [यह सब तत्त्व] तुम्हारी सत्ता विना
पुरुषे	— पुरुष में		
चेतना	— बुद्धि	स्यात्	— हों,
असि	— हो,	निखिलं	— [तो] यह सारा विश्व
त्वम्	— तुम		
पवने	— वायु में	निःसारमेव	— सत्ता रहित ही है।
बलं	— बल [हो],		

ہے ماتا بھگوتی جو کچھ آکاش میں چمکتے تارے

ज्योतींषि यद्दिवि चरन्ति यदन्तरिक्षं چیزیں ہیں اور جو اس
सूते पयांसि यदहिर्धरणीं च धत्ते। میں پھرتے ہیں یعنی سورج
यद्वाति वायुरनलो यदुदर्चिरास्ते چندرما تارے جو اس آکاش
तत्सर्वमम्ब ! तव केवलमाज्ञयैव ॥२१॥ میں پھرتا ہے

جو آکاش بارش گراتا ہے مدھ آکاس جو جل پیدا کرتا ہے اور جو شیش ناگ اس پرتھوی کو دھارن کرتا ہے اور جو چلتا ہے اور جو آگنی اوپر کی طرف اٹھتی ہے سب ماتا

पदच्छेदः

ज्योतींषि यत् दिवि चरन्ति यत् अंतरिक्षं
सूते पयांसि यत् अहिः धरणीं च धत्ते ।
यत् वाति वायुः अनलः यत् उर्दाचः आस्ते
तत् सर्वम् अम्ब ! तव केवलम् आज्ञया एव ॥२१॥

यत्	— जो [यह]
ज्योतींषि	— तारागण
दिवि	— आकाश में
चरन्ति	— फिरते हैं,
यत्	— जो
अन्तरिक्षं	— आकाश
पयांसि	— जलों को
सूते	— उत्पन्न करता है,
यत्	— जो
अहिः	— शेषनाग
धरणीं	— पृथ्वी को
धत्ते	— धारण करता है,
यत्	— जो
वायुः	— वायु
वाति	— चलता है,
यत् च	— और जो
अनलो	— अग्नि
उर्दाचः	— ऊँची दीप्ति वाला
आस्ते	— है
अम्ब !	— हे माता !
तत्सर्वं	— वह सब
केवलं	— केवल
तव एव	— तुम्हारी ही
आज्ञया	— आज्ञा से [स्थिति प्राप्त किये हुए हैं।]

सङ्कोचमिच्छसि यदा गिरिजे ! तदानीं
वाक्तर्कयोस्त्वमसि भूमिरनामरूपा ।
यद्वा विकासमुपयासि यदा तदानीं
त्वन्नामरूपगणनाः सुकरीभवन्ति ॥२२॥

पदच्छेदः

संङ्कोचं इच्छसि यदा गिरिजे ! तदानीं
वाक्तर्कयोः त्वम् असि भूमिः अनामरूपा ।

यत् वा विकासम् उपयासि यदा तदानीम्
त्वत् नामरूपगणनाः सुकरी भवन्ति ॥२२॥

गिरिजे !	— हे पार्वती !	असि	— हो,
यदा	— जब	यद्वा	— या
त्वं	— तुम	यदा	— जब
संकोचं	— स्वरूप का संकोच	विकासं	— स्वरूप के विकास को
इच्छसि	— [ग्रहण करना] चाहती हो	उपयासि	— प्राप्त करती हो
तदानीं	— तब	तदानीं	— उस अवस्था में
वाक-तर्कयोः	— वाणी और तर्क [विचार] में	त्वत्-	— तुम्हारे
अनामरूपा	— नामों और रूपों रहित	नामरूप-	— नामों और रूपों की
		गणनाः	— गिनती
		सुकरी	— आसान
भूमिः	— अवस्था	भवन्ति[1]	— हो जाती है।

भोगाय देवि भवतीं कृतिनः प्रणम्य
भ्रूकिङ्करीकृतसरोजगृहासहस्राः।
चिन्तामणिप्रचयकल्पितकेलिशैले
कल्पद्रुमोपवन एव चिरं रमन्ते ॥२३॥

पदच्छेदः

भोगाय देवि ! भवतीं कृतिनः प्रणम्य
भ्रूकिङ्करी कृतसरोजगृहा सहस्राः।
चिन्तामणि प्रचय कल्पित केलिशैले
कल्पद्रुम उपवने एव चिरं रमन्ते ॥२३॥

१. सभी स्थूल या सूक्ष्म वेधों के नाम और रूप तुम्हारे ही नाम रूप है।

देवि ! — हे देवी !

¹भ्रू- — भौंरों की
किंकरीकृत- — दास बनी हुई
सरोजगृहासहस्राः हज़ारों लक्ष्मियों वाले

कृतिनः — क्रियावान पुरुष
भोगाय — भोग (सांसारिक तथा पारमार्थिक) प्राप्त करने के लिये
भवतीं — आप को
प्रणम्य — प्रणाम करके

चिन्तामणि- — चिन्तामणि रत्नों के
प्रचय- — समूहों से
कल्पित- — बनाये हुए
केलि- — क्रीडा रूपी
शैले — पर्वत पर
कल्पद्रुम- — कल्प वृक्षों के
उपवने — बागों में
एव — ही
चिरं — अनन्त काल
रमन्ते — ऐश्वर्य भोगते हैं । (क्रीडा करते हैं)

हन्तुं त्वमेव भवसि त्वदधीनमीशे
संसारतापमखिलं दयया पशूनाम्।
वैकर्तनीकिरणसंहतिरेव शक्ता
धर्मं निजं शमयितुं निजयैव वृष्ट्या ॥२४॥

पदच्छेदः

हन्तुं त्वम् एव भवसि त्वत् अधीनं ईशे !
संसार तापम् अखिलं दयया पशूनाम् ।
वैकर्तनी किरण संहतिः एव शक्ता
धर्मं निजं शमयितुं निजया एव वृष्ट्या ॥२४॥

---

१. अर्थात् एक ही नहीं अनन्त लक्ष्मियां [भोग लक्ष्मी, मोक्ष लक्ष्मी, भक्ति लक्ष्मी इत्यादि] और ऐश्वर्य उनके वश में हो जाते हैं, यह सब लक्ष्मियां उस पुरुष के आंखों के इशारों पर नाचती हैं ।

ईशे !	— हे स्वतंत्र इच्छा वाली स्वामिनी !
पशूनां	— जन्म मरण में फंसे हुए जीवों के
अखिलं	— सारे
संसारतापं	— जन्म मरण से उत्पन्न हुए दुख को
त्वत्	— [जो] तुम्हारे ही
अधीनं	— अधीन है,
दयया	— अनुग्रह करके
हन्तुं	— नाश करने के लिए
त्वमेव	— तुम ही
भवसि	— समरथ हो । [जैसे]
वैकर्तनी-	— सूर्य की
किरण-	— किरणों का
संहतिरेव	— समूह ही
निजं	— आप उत्पन्न की हुई
घर्मं	— गर्मी को
निजया एव	— अपनी ही [शक्ति से उत्पन्न की हुई]
वृष्ट्या	— वर्षा से
शमयितुं	— शांत करने के लिए
शक्ता	— समरथ है ।

शक्तिः शरीरमधिदैवतमन्तरात्मा
ज्ञानं क्रिया करणमासनजालमिच्छा ।
ऐश्वर्यमायतनमावरणानि च त्वं
किं तन्न यद्भवसि देवि शशाङ्कमौलेः ॥२५॥

पदच्छेदः

शक्तिः शरीरं अधिदैवतं अन्तर् आत्मा
ज्ञान क्रिया करणं आसन जालं इच्छा ।
ऐश्वर्यं आयतनम् आवरणानि च त्वं
किं तत् न यत् भवसि ? देवि ! शशाङ्कमौलेः ॥२५॥

शशाङ्क-	— चन्द्रमा है
मौलेः	— माथे पर जिसके [ऐसे शिव की]
इच्छा	— इच्छा (स्वातंत्र्य) शक्ति
ऐश्वर्यम्	— सर्वकर्त्ताभाव सर्व-

देवि ! — क्रीडन शील शक्ति !
शक्तिः — प्राणशक्ति,
शरीरं — स्थूल शरीर,
अधिदैवतम् — शरीर के अधिष्ठित देव [अर्थात् दस इन्द्रियां],
अन्तरात्मा — अन्तः करण,
ज्ञानं — ज्ञान शक्ति,
क्रिया — क्रिया शक्ति,
करणम् — क्रियाओं का करना,
आसन- — आसन
जालम् — समूह

ज्ञताभाव,
आयतनम् — आश्रय
च — और
आवरणानि — स्वरूप के छिपाने वाले मल (यह सब कुछ)
त्वम् — तुम ही हो।
तत् किं — वह कौन सी वस्तु (भाव) है
यत् — जो
न भवसि — (तुम) नहीं बनती हो।

भूमौ निवृत्तिरुदिता पयसि प्रतिष्ठा
विद्याऽनले मरुति शान्तिरतीतशान्तिः।
व्योम्नीति याः किल कलाः कलयन्ति विश्वं
तासां विदूरतरमम्ब ! पदं त्वदीयम् ॥२६॥

पदच्छेदः

भूमौ निवृत्तिः उदिता पयसि प्रतिष्ठा
विद्या अनले मरुति शान्तिः अतीतशान्तिः
व्योम्नि इति याः किल कलाः कलयन्ति विश्वं
तासां विदूरतरम् अम्ब ! पदं त्वदीयम् ॥२६॥

भूमौ — पृथिवी तत्त्व में
निवृत्तिः — निवृत्ति कला,
पयसि — जल तत्त्व में
प्रतिष्ठा — प्रतिष्ठा कला

याः — जो
कलाः — कलायें
विश्वं — (३६ तत्त्वमय) जगत को

अनले	— अग्नि तत्त्व में	किल	— निश्चय ही
विद्या	— विद्या कला,	कलयन्ति	— प्रकट करती हैं[1]
मरुति	— वायु तत्त्व में	अम्ब !	— हे माता !
शांतिः	— शांति कला,	त्वदीयं	— तुम्हारा
व्योम्नि	— आकाश तत्त्व में	पदं	— स्थान
अतीत शांतिः	— शान्त्यतीत कला	तासां	— इन सब कलाओं से भी
उदिता	— उदय में आई हैं।		
इति	— इस प्रकार	विदूरतरम्	— बहुत ही ऊँचा है।

यावत्पदं पदसरोजयुगं त्वदीयं
नाङ्गीकरोति हृदयेषु जगच्छरण्ये।
तावद्विकल्प जटिलाः कुटिलप्रकारा-
स्तर्कग्रहाः समयिनां प्रलयं न यान्ति ॥२७॥

पदच्छेदः

यावत् पदं पदसरोजयुगं त्वदीयं
न अङ्गीकरोति हृदयेषु जगत् शरण्ये !
तावत् विकल्प जटिलाः कुटिलप्रकाराः
तर्कग्रहाः समयिनां प्रलयं न यान्ति ॥२७॥

जगत्शरण्ये !	— जगच्छरण्ये, हे जगत की रक्षा करने वाली देवी !	समयिनां	— भिन्न २ मतवादियों के
		विकल्प-	— विकल्पों के कारण
यावत्	— जब तक	जटिलाः	— पेचदार बने हुए
त्वदीयम्	— तुम्हारा	कुटिल-	— कुटिल

---

१. यह पांच कलायें ही जगत् की सृष्टि, स्थिति, संहार, पिधान तथा अनुग्रह करती हैं।

पदसरोज-	— चरण कमलों का	प्रकाराः	— प्रकार वाले
युगं	— जोडा	तर्क-	— वाद-विवाद रूपी
हृदयेषु	— हृदयों में	ग्रहाः	— हठ
पदं	— स्थान	प्रलयं	— समाप्त
न अंगीकरोति	— अंगीकार न करे[1]	न यांति	— नहीं होते हैं।
तावत्	— तब तक		

यद्देवयानपितृयानविहारमेके
कृत्वा मनःकरणमण्डलसार्वभौमम्।
याने निवेश्य तव कारणपञ्चकस्य
पर्वाणि पार्वति नयन्ति निजासनत्वम्॥२८॥

पदच्छेदः

यत् देवयान पितृयान विहारम् एके
कृत्वा मनः करण मण्डल सार्वभौमम् ।
याने निवेश्य तव कारणपञ्चकस्य
पर्वाणि पार्वति ! नयन्ति निज आसनत्वम् ॥२८॥

पार्वति !	— हे पार्वती !	विहारम्	— फिरते हैं [अभ्यास करते हैं] (वह)
यत्	— जो		
एके	— कुछ उत्कृष्ट योगी	तव	— तुम्हारे
मनः	— मन को	याने	— [सुषुम्ना] मार्ग में
करण-	— इन्द्रियों के	निवेश्य	— प्रवेश करके
मण्डल-	— समूह का	कारण पंचकस्य	— पांच कारणों[2] के
सार्वभौमम्	— चक्रवर्ती राजा		

१. अर्थात् जब तक मोह में फंसा हुआ जीव तुम्हारी शरण न ले।
२. जगत की सृष्टि इत्यादि करने के पांच कारण ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, सदाशिव, ईश्वर।

कृत्वा	— बनाकर	पर्वाणि	— सिरों को
देवयान-	— देवताओं के मार्ग [प्राण]	निज-	— अपना
पितृयान-	— [और] पितृमार्ग [अपान] में	आसनत्वम्	— आसन
		नयन्ति	— बनाते हैं ।[1]

स्थूलासु मूर्तिषु महीप्रमुखासु मूर्तेः
कस्याश्चनापि तव वैभवमम्ब यस्याः ।
पत्या गिरामपि न शक्यत एव वक्तुं
सासि स्तुता किल मयेति तितिक्षितव्यम् ॥२९॥

पदच्छेदः

स्थूलासु मूर्तिषु मही प्रमुखासु मूर्तेः
कस्याःचन अपि तव वैभवम् अम्ब ! यस्याः ।
पत्या गिराम् अपि न शक्यते एव वक्तुं
सा असि स्तुता किल मया इति तितिक्षितव्यम् ॥२९॥

मही-	— पृथिवी	वक्तुं	— वर्णन करने के लिए
प्रमुखासु	— इत्यादि	न शक्यते	— असमर्थ है
स्थूलासु	— स्थूल	सा	— वही (आप ऐसे उत्कृष्ट महिमा वाली)
मूर्तिषु	— रूपों में से		
कस्याश्चन	— किसी एक		
मूर्तेः	— रूप का	अम्ब !	— हे माता !
अपि	— भी	मया	— मुझ (जैसे तुच्छ) से
यस्याः	— जिस	किल	— निश्चय ही

१. अर्थात् इन से भी ऊँची पदवी प्राप्त करते हैं ।

तव	— तुम्हारे (अकथनीय स्वरूप का)	स्तुता असि	— स्तुति की जा रही हो
वैभवम्	— प्रभाव (महिमा) को	इति	— (मेरी) यह धृष्टता
गिरां	— वाणियों का	तितिक्षितव्यम्	— कृपया आप सहलें (अर्थात् मुझे क्षमा करें।)
पत्या	— स्वामी (ब्रह्मा जी)		
अपि	— भी		

कालाग्निकोटिरुचिमम्ब षडऽध्वशुद्धा-
वाप्लावनेषु भवतीममृतौघवृष्टिम्।
श्यामां घनस्तनतटां सकलीकृतौ च
ध्यायन्त एव जगतां गुरवो भवन्ति ॥३०॥

पदच्छेदः

काल अग्निकोटिरुचिम् अम्ब ! षट् अध्वशुद्धौ
आप्लावनेषु भवतीम् अमृतओघ वृष्टिम्।
श्यामां घनस्तनतटां सकली कृतौ च
ध्यायन्तः एव जगतां गुरवः भवन्ति ॥३०॥

अम्ब !	— हे माता !	सकली-कृतौ	— इनको सम्पूर्ण बनाने [स्थिति करने] में
षडध्व-	— छः मार्गों को[1]	श्यामां	— श्याम वर्ण
शुद्धौ	— शुद्ध करने में[2]	घनस्तनतटां	— भारी स्तनोंसे [माता के रूप में दूध देती
भवतीं	— आपको		
कालग्नि-कोटि-	— करोडों कालाग्नि रुद्रों जैसी		

१. वर्ण, पद, मन्त्र, कला, तत्त्व, भुवन।
२. अभेद रूप बनाने में।

रुचिम् — दीप्ति (तेज) वाली,
आप्लावनेषु — इन भुवनों को सींचन (सृष्टि) करने में
अमृतौघ- — अमृत से भरी हुई
वृष्टिं — वर्षारूप,
च — और

हुई आपको भक्त]
ध्यायन्त एव — एकाग्रचित से ध्यान करते हुए ही [क्षण-मात्र में]
जगतां — सभी जगतों के
गुरवो — गुरु[1]
भवन्ति — बन जाते हैं ।

विद्यां परां कतिचिदम्बरमम्ब केचि-
दानन्दमेव कतिचित्कतिचिच्च मायाम् ।
त्वां विश्वमाहुरपरे वयमामनाम
साक्षादपारकरुणां गुरुमूर्तिमेव ।।३१।।

पदच्छेदः

विद्यां परां कतिचित् अम्बरम् अम्ब ! केचित्
आनन्दम् एव कतिचित् कतिचित् च मायाम् ।
त्वां विश्वम् आहुः अपरे वयम् आमनाम
साक्षात् अपार करुणां गुरुमूर्तिम् एव ।।३१।।

अम्ब ! — हे माता !
त्वां — तुझको
कतिचित् — कुछ भक्त
परां विद्यां — परा [उत्कृष्ट] ज्ञान रूप,
केचित् — कुछ

वाली) माया रूप,
अपरे — इन से भिन्न कुछ लोग
त्वां — तुझको
विश्वं — जगत रूप ही
आहुः — कहते हैं

१. उत्तम माननीय सृष्टि आदि करने में समर्थ ।

अम्बरम् — आकाश रूप [चिदाकाश],
कतिचित् — कुछ
आनन्दमेव — (केवल) आनन्दरूप ही
च — और
कतिचित् — कुछ
मायाम् — (भेद उत्पन्न करने

वयम् — (परन्तु) हम (इन से भिन्न भक्त) (आपको)
साक्षाद् — प्रत्यक्ष
अपार — पाररहित
करुणां — अनुग्रहरूप
गुरुमर्त्तिमेव — सद्‌गुरु का स्वरूप ही
आमनाम — कहते हैं।

कुवलयदलनीलं बर्बरस्निग्धकेशं
पृथुतरकुचभाराक्रान्तकान्तावलग्नम् ।
किमिह बहुभिरुक्तैस्त्वत्स्वरूपं परं नः
सकलभुवनमातः सन्ततं सन्निधत्ताम् ॥३२॥

पदच्छेदः

कुवलयदलनीलं बर्बर स्निग्धकेशं
पृथुतरकुचभार आक्रान्त कान्त अवलग्नम् ।
किम् इह बहुभिः उक्तैः त्वत् स्वरूपं परं नः
सकल भुवन मातः ! सन्ततं सन्निधत्ताम् ॥३२॥

सकल- — हे सभी
भुवन- — भुवनों की
मातः ! — माता !
इह — यहां
बहुभिः — अधिक
उक्तैः — कहने से
किं — क्या [लाभ है ?]

स्निग्धकेशं — चिकने चमकीले बालों वाला,
पृथुतर- — मोटे
कुचभार- — स्तनों के भार से
आक्रान्त- — घेरे हुए
कान्त- — सुन्दर
अवलग्नम् — कमर वाला

	केवल इतनी प्रार्थना है कि
कुवलयदल-	— नीली कुईं के पुष्पों जैसा
नीलं	— श्याम वर्ण,
बर्बर-[1]	— बर्बर (जैसे)
त्वत्- परं स्वरूपं	— तुम्हारा उत्कृष्ट स्वरूप
नः	— हमें
सन्ततं	— नित्य
सन्निधत्ताम्	— प्रकट रहे।

इति श्री पञ्चस्तव्यां चतुर्थोऽम्बस्तवः ॥

१. एक चिकनी चमकेली लता जिसे कश्मीरी में बबर कहते हैं।

ॐ

अथ सकलजननीस्तवः पञ्चमः

ॐ अजानन्तो यान्ति क्षयमवशमन्योन्यकलहै-
रमी मायाग्रन्थौ तव परिलुठन्तः समयिनः।
जगन्मातर्जन्मज्वरभयतमःकौमुदि ! वयं
नमस्ते कुर्वाणाः शरणमुपयामो भगवतीम् ॥ १॥

पदच्छेदः

अजानन्तः यान्ति क्षयम् अवशम् अन्योन्य कलहैः
अमी माया ग्रन्थौ तव परिलुठन्तः समयिनः।
जगत् मातः ! जन्मज्वरभयतमःकौमुदि ! वयं
नमः ते कुर्वाणाः शरणम् उपयामः भगवतीम् ॥१॥

जगन्मातः !	— हे जगतों को उत्पन्न करने वाली मां !
जन्मज्वर-भयतमः-कौमुदि !	— जन्ममरण ज्वर के भय रूपी अंधकार के लिये चांदनी रूप! (अंधकार को नाश करने वाली)
अमी समयिनः	— यह सभी भिन्न २ मतवादी
परिलुठन्तः	— गिरते फंसते हुए
अवशम्	— बेबस (परतंत्र) होकर
क्षयंयान्ति	— नाशको प्राप्त होते हैं (जन्ममरण रूपी चक्र में फंसते हैं)
वयं	— हम (शरणागत भक्त)
ते भगवतीम्	— तुझ ऐश्वर्यशालि-

अजानन्तः	— तुम्हारे सच्चे स्वरूप को न जानते हुए		नी भगवती को
अन्योन्य-	— एक दूसरे के साथ	नमः	— नमस्कार
कलहैः	— तर्क वितर्क रूप झगड़ा करने के कारण	कुर्वाणाः	— करते हुए (देहाभिमान को तुझ में अर्पण करते हुए)
तव	— तुम्हारी	शरणं	— शरण में
मायाग्रन्थौ	— माया रूपी गांठ में (फंदे में)	उपयामः	— आते हैं।

वचस्तर्कागम्यस्वरसपरमानन्दविभव-
प्रबोधाकाराय द्युतितुलितनीलोत्पलरुचे।
शिवस्याराध्याय स्तनभरविनम्राय सततं
नमो यस्मै कस्मैचन भवतु मुग्धाय महसे ॥२॥

पदच्छेदः

वचः तर्क अगम्य स्वरस परम-आनन्द विभव-
प्रबोध आकाराय द्युति तुलित नील उत्पल रुचे !
शिवस्य आराध्याय स्तन भर विनम्राय सततं
नमः यस्मै कस्मैचन भवतु मुग्धाय महसे ॥२॥

द्युति-	— तेज में	आराध्याय	— आराधना करने योग्य [तुझ देवी को]
तुलित-	— समान बने हुए	स्तनभरविनम्राय	भारी वक्षः स्थल [स्तनों] के कारण झुकी हुई देवी को [जगत की सृष्टि करने के लिए उद्योग में आई हुई]
नीलोत्पल-	— कमल जैसी		
रुचे !	— दीप्ति वाली [हे देवी !]		
वचः-	— वाणी [और]		
तर्क-	— विचार से		
अगम्य-	— न जानने योग्य		

स्वरस- — अपने ही [चित्] रस से

परमानंदविभव – परमानंद रूप ऐश्वर्य को

प्रबोधाकाराय — जगाने वाले स्वरूप वाली [तुझ देवी को]

शिवस्य -- शिव से भी

यस्मैकस्मैचन — किसी अलौकिक [मन और वाणी के अगोचर]

मुग्धाय — सुन्दर [आनन्द रूप]

महसे — तेज को [चित् रूप को]

नमो भवतु — नमस्कार हो।

लुठद्गुञ्जाहारस्तनभरनमन्मध्यलतिका-
मुदञ्चद्धर्माम्भः कणगुणितनीलोत्पलरुचम्।
शिवं पार्थत्राणप्रवणमृगयाकारगुणितं
शिवामन्वक्यान्तीं शवरमहमन्वेमि शवरीम् ॥३॥

पदच्छेदः

लुठत् गुञ्जाहार स्तनभर नमन् मध्यलतिकाम्
उदञ्चत् धर्माम्भः कण गुणित नीलोत्पलरुचम् ।
शिवं पार्थत्राण प्रवण मृगया आकार गुणितं
शिवां अन्वक्यान्तीं शवरं अहं अन्वेमि शवरीम् ॥३॥

उदञ्चत्- — निकलते हुए

धर्माम्भः- — पसीने के

कण- — परमाणुओं [कतरों] से

गुणित- — समान बने हुए

नीलोत्पलरुचम् कमल की शोभा-युक्त [मुख वाले शिव के]

पार्थत्राण- — अर्जुन की रक्षा करने में

लुठत्- — लटकते हुए [स्पन्द-मान्]

गुञ्जाहार- — गुंजा फलों [रत्ति-यों] के

स्तन भर- — भारी वक्षःस्थलों के बीच में

नमन्- — लटकते हुए

मध्यलतिकां — हार के बीच वाले आभूषण युक्त

(4)

प्रवण- — निपुण

मृगयाकार- — शिकारी के वेश से

गुणितं — शोभित [शिव के]

शवरं शिवं — शिकारी रूप शिव के

अन्वक् यान्तीं — पीछे पीछे चलती हुई

शवरीं — शिकारिन रूप धारण किये हुए

शिवां — शिव की शक्ति [पार्वती] को

अहं — मैं

अन्वेमि — बार बार प्रणाम करता हूं।

मिथः केशाकेशिप्रधननिधनास्तर्कघटना,
बहुश्रद्धाभक्तिप्रणयविषयाश्चाप्तविधयः।
प्रसीद प्रत्यक्षीभव, गिरिसुते ! देहि, शरणं
निरालम्बं चेतः परिलुठति पारिप्लवमिदम् ॥४॥

पारिप्लवमिदम्

पदच्छेदः

मिथः केशाकेशिप्रधननिधनाः तर्कघटनाः
बहुश्रद्धाभक्तिप्रणयविषयाः च आप्तविधयः।
प्रसीद प्रत्यक्षीभव गिरिसुते ! देहि शरणं
निरालम्बं चेतः परिलुठति पारिप्लवम् इदम् ॥४॥

तर्कघटना — वादविवाद करने वाले (भिन्न भिन्न मतवादी)

मिथः- — एक दूसरे के

केशाकेशि- — बालों को उखाडने के समान

प्रधन- — झगडों [कलह] के कारण

निधनाः, — नाश को प्राप्त होते से पूर्ण [होती हैं],

गिरिसुते ! — [इस लिए] हे पार्वती !

प्रसीद — हम पर प्रसन्न हो जाओ,

प्रत्यक्षी भव — [और] प्रकट रूप से अपना स्वरूप दिखाओ,

देहि शरणं — हमें अपनी शरण में

हैं,

आप्त-	— और परमार्थ को जानने वालों की
विषय: च	— विधियां [व्यवहार]
बहु श्रद्धाभक्ति-	अत्यन्त विश्वास, प्रेम और
प्रणयविषया:	— नम्रता रूप विषय

ले लो,

निरालम्बं	— आश्रय हीन
चेत:	— हमारा मन
इदं	— इस [संसार रूप]
परिप्लवं	— उपद्रव में
परिलुठति	— डूब रहा है ।

शुनां वा वह्ने र्वा खगपरिषदो वा यदशनं
कदा केन क्वेति क्वचिदपि न कश्चित्कलयति ।
अमुष्मिन्विश्वासं विजहिहि ममाह्नाय वपुषि
प्रपद्येथाश्चेत: सकलजननीमेव शरणम् ।।५।।

पदच्छेद:

शुनां वा वह्ने: वा खगपरिषद: वा यत् अशनं
कदा केन क्व इति क्वचित् अपि न कश्चित् कलयति ।
अमुष्मिन् विश्वासं विजहि हि मम अह्नाय वपुषि
प्रपद्येथा: चेत: सकलजननीम् एव शरणम् ।।५।।

चेत: !	— हे मन !
यत्	— जो यह (शरीर)
शुनां वा	— या तो कुत्तों का
वह्ने: वा	— या तो अग्नि का (जलाये जाने से)
खगपरिषदो वा	या तो पक्षियों के समूह का
अशनं	— भोजन बनता है
कदा	— किस समय पर,

न कलयति	— (विचार नहीं करता है) नहीं जानता है
अमुष्मिन्	— इस (ऐसे शरीर)
मम	— मेरे
वपुषि	— शरीर पर
विश्वासं	— विश्वास (अभिमान)
अह्नाय	— तुरंत ही
विजहिहि	— छोड दे

केन	— किस कारण से,	सकलजननीम् एव	सबों की माता (देवी) की ही
क्व	— किस स्थान पर,	शरणं	— जो बचाने वाली है
इति	— इस बात को	प्रपद्येथा:	— शरण लो ।
कश्चित्	— कोई भी पुरुष		
क्वचिदपि	— कहीं भी		

अनाद्यन्ताभेदप्रणयरसिकापि प्रणयिनी
शिवस्यासीर्यत्त्वं परिणयविधौ देवि ! गृहिणी ।
सवित्री भूतानामपि यदुदभूः शैलतनया,
तदेतत्संसारप्रणयनमहानाटकसुखम् ॥६॥

पदच्छेद:

अनाद्यन्ता भेदप्रणयरसिका अपि प्रणयिनी
शिवस्य आसी: यत् त्वं परिणयविधौ देवि ! गृहिणी
सवित्री भूतानाम् अपि यत् उदभू: शैलतनया
तत् एतत् संसार प्रणयनमहानाटक सुखम् ॥६॥

देवि !	— हे देवी !	आसी:	— बन गई
अनाद्यन्ता-	— आदि और अंत रहित,	यत्	— (और) जो
		भूतानां	— जीवों की
भेदप्रणय-	— भेद के प्रेम का	सवित्री	— उत्पन्न करने वाली
रसिकापि	— स्वाद करने वाली होकर भी	अपि	— (होते हुए) भी
		शैलराज-	— हिमालय की
प्रणयिनी	— प्रेम से भरी	तनया	— पुत्री (बन कर)
यत्	— जो	उदभू:	— उत्पन्न हुई
त्वम्	— तू	तदेतत्	— वही यह सब
परिणयविधौ	— विवाह की विधि में	संसार-	— संसार के

(7)

शिवस्य — शिव की
गृहिणी — पत्नी
महा नाटक- — बडे नाटक का
सुखम् — सुख है

ब्रु वन्त्येके तत्त्वं भगवति ! सदन्ये विदुरस-
त्परे मातः ! प्राहुस्तव सदसदन्ये सुकवयः ।
परे नैतत्सर्वं समभिदधते देवि ! सुधिय-
स्तदेतत्त्वन्मायाविलसितमशेषं ननु शिवे ! ।।७।।

पदच्छेदः

ब्रुवन्ति एके तत्त्वं भगवति सत् अन्ये विदुःअसत्
परे मातः प्राहुः तव सत् असत् अन्ये सुकवयः ।
परे न एतत् सर्वं समभिदधते देवि सुधियः
तत् एतत् त्वत् माया विलसितं अशेषं ननु शिवे ।।७।।

भगवति ! — हे ऐश्वर्य शालिनी देवी !
एके — कुछ लोग
तव — तुम्हारे
तत्त्वं — स्वरूप को
सत् — सत् रूप [भाव]
ब्रुवन्ति — कहते हैं,
अन्ये — इन से भिन्न कुछ और लोग
असत् — असत् रूप [अभाव]
विदुः — जानते हैं,
अन्ये परे — इन से भी परे [कुछ]
सुकवयः — सर्वज्ञ जन
सदसत् — [तुम्हारे स्वरूप को]
प्राहुः — कहते हैं,
परे — इन से भी परे [कुछ योगी]
सुधियः — बुद्धिमान
नैतत्सर्वं — इन सत् और असत् दोनों में से कुछ भी नहीं
समभिदधते — कहते हैं,
देवि ! शिवे ! — हे देवी, हे शिव की शक्ति !
तत् — तो
एतत् अशेषं — यह सब कुछ
ननु — निश्चय ही
त्वत्- — तुम्हारी

	सत् तथा असत् दोनों ही [भावा-भाव]	माया-	— मायाशक्ति का
		विलसितम्	— विकास है।

तडित्कोटिज्योतिद्युतिदलितषड्ग्रन्थिगहनं
प्रविष्टं स्वाधारं पुनरपि सुधावृष्टिवपुषा।
किमप्यष्टात्रिंशत्किरणसकलीभूतमनिशं
भजे धाम श्यामं कुचभरनतं बर्बरकचम् ॥८॥

पदच्छेदः

तडित् कोटिज्योतिः द्युतिदलितषट्ग्रन्थि गहनं
प्रविष्टं स्वाधारं पुनः अपि सुधावृष्टि वपुषा।
किम् अपि अष्टात्रिंशत् किरण सकली भूतम् अनिशं
भजे धाम श्यामं कुचभरनतं बर्बर कचम् ॥८॥

तडित्कोटि-	— करोडों बिजलियों के
ज्योति-	— प्रकाश की
द्युति-	— दीप्तियों से
दलित-	— काटी हुई
षड्ग्रंथिगहनं	— छः ग्रंथि रूप जंगल [काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, अहङ्कार] वाले,
पुनः अपि	— फिर भी
सुधावृष्टि-	— चित् अमृत वर्षा रूप
वपुषा	— स्वरूप से
किमपि	— किसी अलौकिक,
अष्टात्रिंशत्-[1]	— अठतीस
किरण-	— किरणों से
सकलीभूतं	— परिपूर्ण बने हुए
श्यामं	— श्याम वर्ण
धाम	— स्वरूप [देवी] को
बर्बर कचम्	— [कश्मीरी] बर्बर जैसे चमकीले स्वरूप को
अनिशं	— बारबार [निरन्तर]
भजे	— [मैं] नमस्कार कर-

१. ३८ किरण, सूर्य १२ कला, चन्द्रमा १६ कला, अग्नि १० कला।

स्वाधारं — अपने आधार में
प्रविष्टं — प्रवेश किये हुए

...ता हूं।

चतुष्पत्रान्तः षड्दलभगपुटान्तस्त्रिवलय-
स्फुरद्विद्युद्वह्निद्युमणिनियुताभद्युतियुते।
षडश्रं भित्त्वादौ दशदलमथ द्वादशदलं
कलाश्रं च द्व्यश्रं गतवति ! नमस्ते गिरिसुते! ॥६॥

पदच्छेदः

चतुष्पत्रअन्तः षड्दलभगपुटअन्तः त्रिवलय-
स्फुरत् विद्युत् वह्निद्युमणि नियुताभद्युतियुते
षट् अश्रं भित्त्वा आदौ दशदलं अथ द्वादशदलं
कला अश्रं च द्विअश्रं गतवति ! नमस्ते गिरिसुते ! ॥९॥

चतुष्पत्रान्तः	— चार पत्ते वाले कमल [मूलाधार] के बीच में
षड्दल-	— छः पत्ते रूप
भगपुटान्तः	— दो तिकोणों के भीतर [इच्छा-ज्ञान-क्रिया और इनके वेद्य]
त्रिवलय-	— तीन बार लपेटी हुई
स्फुरत्-	— विकसित होती हुई
विद्युत्-	— बिजली
वह्नि-	— अग्नि [तथा]
द्युमणि-	— सूर्य के समान
नियुताभ-	— अनन्त
द्युतियुते !	— तेजवाली !
अथ	— इसके बाद
दशदलं	— दस पत्ते वाले कमल में [मणिपूर-नाभि]
द्वादशदलं	— फिर बारह पत्ते वाले कमल को [अनाहत-हृदय]
कलाश्रं	— फिर १६ पत्ते वाले कमल को [विशुद्ध-कण्ठ]
द्व्यश्रं	— फिर २ पत्ते वाले कमल में [आज्ञा-भ्रूमध्य]
गतवति	— प्रवेश करती हुई [सहस्रार और ब्रह्म-

			रन्ध्र में]
आदौ	— पहले	गिरिसुते !	— हे हिमालय की पुत्री पार्वती !
षडश्रं	— षड्दल कमल को [स्वाधिष्टान]		
भित्त्वा	— फाड कर	नमस्ते	— तुझे नमस्कार हो।

(10)

कुलं केचित्प्राहुर्वपुरकुलमन्ये तव बुधाः
परे तत्सम्भेदं समभिदधते कौलमपरे।
चतुर्णामप्येषामुपरि किमपि प्राहुरपरे
महामाये ! तत्त्वं तव कथममी निश्चिनुमहे ॥१०॥

पदच्छेदः

कुलं केचित् प्राहुः वपुः अकुलं अन्ये तव बुधाः
परे तत्सम्भेदं समभिदधते कौलं अपरे।
चतुर्णां अपि एषाम् उपरि किं अपि प्राहुः अपरे
महामाये ! तत्त्वं तव कथं अमी निश्चिनुमहे ॥१०॥

महामाये !	— हे महामाया !	समभिदधते	— कहते हैं,
केचित्	— कुछ लोग	अपरे	— कुछ और लोग
तव	— तुम्हारे	कौलम्	— कौलरूप [कहते हैं],
वपुः	— स्वरूप को	अपरे अमी	— इन से भी उत्कृष्ट ज्ञानी
कुलं	— कुल रूप [३६ तत्त्व रूप, विश्वमय]	एषां	— इन
प्राहुः	— कहते हैं।	चतुर्णां अपि	— चारों से भी
अन्ये	— इन से भिन्न कुछ और	उपरि	— ऊंचा [उत्कृष्ट]
		किमपि	— कोई अलौकिक [अकथनीयरूप]
बुधाः	— ज्ञानी लोग		
अकुलं	— कुलातीत [विश्वोत्तीर्ण] [मानते हैं],	प्राहुः	— मानते हैं,
		तव तत्त्वं	— तुम्हारे स्वरूप को

परे	— इन से भी भिन्न कुछ
तत्संभेदं	— [इन दोनों] कुल तथा अकुल के मेल रूप, [विश्वमय तथा विश्वोत्तीर्ण]
कथं	— कैसे
निश्चिनुमहे	— हम निश्चय रूप से जानें ! [नहीं जान सकते।]

षडध्वारण्यानीं प्रलयरविकोटिप्रतिरुचा
रुचा भस्मीकृत्य स्वपदकमलप्रह्वशिरसाम्।
वितन्वानः शैवं किमपि वपुरिन्दीवररुचिः
कुचाभ्यामानम्रः शिवपुरुषकारो विजयते ।।११।।

पदच्छेदः

षट्अध्वअरण्यानीं प्रलयरवि कोटि प्रतिरुचा
रुचा भस्मीकृत्य स्वपदकमलप्रह्व शिरसाम् ।
वितन्वानः शैवं किंअपि वपुः इन्दीवररुचिः
कुचाभ्याम् आनम्रः शिव पुरुष कारो विजयते ।।११।।

प्रलयरविकोटि-	प्रलयकाल के करोड़ों सूर्यों के समान
प्रतिरुचा	— दीप्ति वाले
रुचा	— तेज से
षट्अध्व-	— छः अध्व [मार्ग] रूप
अरण्यानीं	— वन को
भस्मीकृत्य	— जलाकर
स्वपदकमल-	— अपने चरण कमलों पर
प्रह्वशिरसाम्	— झुके हुए मस्तक वाले [भक्तों] को
	कासमय]
शैवं वपुः	— शिव के स्वरूप को
वितन्वानः	— विस्तार से प्रकट करता हुआ
कुचाभ्याम्	— ज्ञान क्रियारूप स्तनों के बोझ से [दूध पिला कर पालने वाली माता के]
आनम्रः	— झुका हुआ
शिव-	— शिव का

(12)

किमपि	— किसी अलौकिक [अकथनीय]	पुरुषकारः	— उद्योग [शक्ति]
इन्दीवररुचिः	— कमल की शोभा वाले [सङ्कोच वि-	विजयते	— जयशील है [सभी से उत्कृष्ट बढ चढ कर है ।]

प्रकाशानन्दाभ्यामविदितचरीं मध्यपदवीं
प्रविश्यैतद्द्वन्द्वं रविशशिसमाख्यं कवलयन् ।
प्रविश्योर्ध्वं नादं लयदहनभस्मीकृतकुलः
प्रसादात्ते जन्तुः शिवमकुलमम्ब ! प्रविशति ।१२।

पदच्छेदः

प्रकाश आनन्दाभ्यां अविदितचरीं मध्य पदवीं
प्रविश्य एतत् द्वन्द्व रविशशिसमाख्यं कवलयन् ।
प्रविश्य ऊर्ध्वं नादं लयदहनभस्मीकृतकुलः
प्रसादात् ते जन्तुः शिवं अकुलं अम्ब ! प्रविशति ॥१२॥

अम्ब !	— हे माता !		रूप
अविदितचरीं	— पहले अच्छी तरह न जानी हुई	दहन-	— अग्नि से
		भस्मीकृत-	— जलाये हुए [आत्म-सात् किए हुए]
मध्यपदवीं	— संवित् में		
प्रकाशानन्दाभ्यां	चित् और आनन्द द्वारा	कुलः	— सभी तत्त्वों वाला [योगी]
प्रविश्य	— प्रवेश करके,	जन्तुः	— जीव
रविशशिसमाख्यं	सूर्य और चन्द्रमा नाम वाले [प्राण, अपान]	ते	— तुम्हारे
		प्रसादात्	— अनुग्रह से
		अकुलं	— तत्त्वों से अतीत
एतत् द्वन्द्वं	— इस जोडे को	शिवं	— शिव में
कवलयन्	— ग्रास करता हुआ,	प्रविशति	— प्रवेश करता है ।

ऊर्ध्वं नादं	— ऊपर वाले नाद में		[शिव रूप ही बन
प्रविश्य	— प्रवेश करके		जाता है।
लय-	— लय [आत्मसात्कार]		

प्रियङ्गुश्यामाङ्गीमरुणतरवासःकिसलयां
समुन्मीलन्मुक्ताफलबहुलनेपथ्यकुसुमाम्।
स्तनद्वन्द्वस्फारस्तबकनमितां कल्पलतिकां
सकृद्ध्यायन्तस्त्वां दधति शिवचिन्तामणिपदम् ॥१३॥

पदच्छेदः

प्रियङ्गु श्यामअङ्गीं अरुणतरवासः किसलयां
समुन्मीलत् मुक्ताफलबहुलनेपथ्य कुसुमाम्।
स्तनद्वन्द्वस्फारस्तवकनमितां कल्पलतिकां
सकृत् ध्यायन्तः त्वां दधति शिवचिन्तामणिपदम् ॥१३॥

प्रियङ्गु-	— प्रियंगु[1] जैसे	स्तवक-	— गुच्छे से
श्यामाङ्गीम्	— श्याम वर्ण अङ्गों सहित,	नमितां	— झुकी हुई
अरुणतर-	— लालरङ्ग के	कल्पलतिकां	— [भोग तथा मोक्ष सिद्ध कराने वाली] कल्प लता रूप
वासः	— वस्त्र रूपी		
किसलयां	— कोंपलों वाले,	त्वां	— तुम्हारे स्वरूप को
समुन्मीलन्-	— पूरी तरह खिले हुए	सकृत्	— एक ही बार [निरन्तर]
मुक्ताफल-	— मोती रूप फल की		
बहुल-	— बहुतात से	ध्यायन्तः	— ध्यान करने वाले [भक्त]
नेपथ्य-	— सजावट वाले		

१. एक लता का नाम जिसके सम्बन्ध में कहा जाता है कि जहां उसे किसी स्त्री ने स्पर्श किया कि, वह फूलने लगती है।

कुसुमां	— फूलों युक्त [और]	शिवचिन्तामणिपदं	शिवरूप चिंतामणि-रत्न के स्थान को
स्तनद्वन्द्व-	— ज्ञान क्रिया रूप दो स्तनों के	दधति	— धारण करते हैं। [प्राप्त करते हैं।]
स्फार-	— फैलाव रूप		

षडाधारावर्तैरपरिमितमन्त्रोर्मिपटलै-
श्चलन्मुद्राफेनैर्बहुविधलसद्दैवतझषैः।
क्रमस्रोतोभिस्त्वं वहसि परनादामृतनदीं
भवानि! प्रत्यग्रा शिवचिदमृताब्धिप्रणयिनी॥१४॥

पदच्छेदः

षट्आधार आवर्तैः अपरिमितमन्त्रऊर्मिपटलैः
चलन् मुद्राफेनैः बहुविधलसत् दैवतझषैः।
क्रमस्रोतोभिः त्वं वहसि परनाद अमृत नदीं
भवानि! प्रत्यग्रा शिवचित् अमृत अब्धि प्रणयिनी॥१४॥

भवानि!	— हे देवि!		वाले,
त्वं	— तुम	चलन्-	— चञ्चल
प्रत्यग्रा	— नित्य नवीन (अविनाशी स्वरूप)	मुद्राफेनैः	— मुद्रारूप झागों वाले
शिव-	— शिवरूप	बहुविधलसत्-	— अनेक प्रकार से विकसित
चित् अमृत-	— चैतन्य अमृत के	दैवतझषैः	— देवता (इन्द्रियरूप) रूप मगरमच्छों भरे
अब्धि-	— सागर में		
प्रणयिनी	— पहुँचाने वाली (जीव को शिव के साथ एकता कराने वाली)	क्रमस्रोतोभिः	— क्रम से चलने वाले प्रवाहों वाली (नदी को)
षट्आधार-	— छः आधार रूप	परनादामृत-	— परमनाद (अकृत्रिम अहंता)

	— (काम, क्रोध, लोभ मोह, मद, अहंकार)	नदीं	— रूप अमृत की नदी को
आवर्तैः	— भंवरों वाले,	वहसि	— चलाती हो (शिव सागर में पहुँचाती हो।)
अपरिमित-	— अनन्त		
मंत्र-	— मन्त्ररूप		
ऊर्मिपटलैः	— लहरियों के समूहों		

महीपाथोवह्निश्वसनवियदात्मेन्दु रविभि-
र्वपुर्भिग्र्स्तांशैरपि तव कियानम्ब ! महिमा।
अमून्यालोक्यन्ते भगवति ! न कुत्राप्यणुतरा-
मवस्थां प्राप्तानि त्वयि तु परमव्योमवपुषि ॥१५॥

पदच्छेदः

मही पाथः वह्नि श्वसन वियत् आत्मा इन्दुरविभिः
वपुर्भिः ग्रस्तअंशैः अपि तव कियान् अम्ब ! महिमा।
अमूनि आलोक्यन्ते भगवति ! न कुत्र अपि अणुतराम्
अवस्थां प्राप्तानि त्वयि तु परमव्योमवपुषि ॥१५॥

अम्ब !	— हे माता !	महिमा	— महिमा
मही[1]	— पृथ्वी,	कियान्	— कितनी बडी है (जो वर्णन नहीं की जा सकती)
पाथो[2]	— जल,		
वह्नि[3]	— अग्नि,		
श्वसन,[4]	— वायु,		
वियत्[5]	— आकाश	अमूनि	— यह सब (आठों)
आत्मा,[6]	— जीवात्मा (प्रमाता)	त्वयि तु	— तुझ
इन्दु,[7]	— चन्द्रमा (प्रमेय)	परमव्योमवपुषि	परमचिदाकाश स्वरूप में
रविभिः[8]	— सूर्य रूप (प्रामण)		
वपुर्भिः	— स्वरूपों से	अणुतरांअवस्थां	अत्यन्त सूक्ष्म अवस्था को
ग्रस्तांशैः	— ग्रास हुए अङ्गों स-		

	हित से	प्राप्तानि	— पहुँच कर
अपि	— भी	न कुत्रापि	— कहीं भी नहीं
तव	— तुम्हारी	आलोक्यन्ते	— दिखाई देते हैं।

मनुष्यास्तिर्यञ्चो मरुत इति लोकत्रयमिदं
भवाम्भोधौमग्नं त्रिगुणलहरीकोटिलुठितम्।
कटाक्षश्चेदत्र क्वचन तव मातः! करुणया
शरीरी सद्योऽयं व्रजति परमानन्दतनुताम्॥१६॥

पदच्छेदः

मनुष्याः तिर्यञ्चः मरुतः इति लोकत्रयम् इदं
भव अम्भोधौमग्नं त्रिगुणलहरी कोटि लुठितम्।
कटाक्षः चेत् अत्र क्वचन तव मातः! करुणया
शरीरी सद्यः अयं व्रजति परमानन्दतनुताम्॥१६॥

मनुष्याः	— मनुष्य,	मातः!	— हे माता,
तिर्यञ्चः	— पशु पक्षी आदि,	अत्र	— इन में से
मरुतः	— देवता समूह,	क्वचन	— किसी एक पर
इति	— इस प्रकार	तव करुणया	— तुम्हारी दया से
इदम्	— यह	कटाक्षः	— अनुग्रह की दृष्टि
लोकत्रयम्	— तीन लोकों का समूह	चेत्	— यदि हो, [तो]
त्रिगुण-	— तीन गुण [सत्व, रज, तम] रूप	शरीरी अयं	— वह जीव
		सद्यः	— तत्क्षणात्
लहरीकोटि-	— करोडों लहरों से	परमानन्द-	— परमानन्द-
लुठितम्	— व्याकुल किया हुआ	तनुताम्	— स्वरूप भाव को
भवाम्भोधौ	— संसार सागर में	व्रजति	— प्राप्त होता है।
मग्नम्	— डूबा हुआ है,		

कलां प्रज्ञामाद्यां समयमनुभूतिं समरसां
गुरुं पारम्पर्यं विनयमुपदेशं शिवकथाम् ।
प्रमाणं निर्वाणं परममतिभूतिं परगुहां
विधिं विद्यामाहुः सकलजननीमेव मुनयः ॥१७॥

पदच्छेदः

कलां प्रज्ञां आद्यां समयं अनुभूतिं समरसां
गुरुं पारम्पर्यं विनयं उपदेशं शिवकथाम् ।
प्रमाणं निर्वाणं परमं अतिभूतिं परगुहाम्
विधिं विद्यां आहुः सकलजननीं एव मुनयः ॥१७॥

मुनयः	— मननशील पुरुष	विनयं	— आदर रूप,
सकलजननीं	— जगत की माता	उपदेशं	— उपदेश रूप,
एव	— [देवी] को ही	प्रमाणं,	— प्रमाण रूप,
कलां	— क्रिया शक्ति रूप,	निर्वाणं	— मुक्ति रूप,
प्रज्ञां	— बुद्धि रूप,	परमं	— उत्कृष्ट
आद्यां	— सब का आद्य,	अतिभूतिं	— ऐश्वर्य रूप,
समयम्	— परमसिद्धान्त रूप,	परगुहां	— अति रहस्य माया रूप,
अनुभूतिं	— अहं विमर्श के अनुभव रूप,	विधिं	— विधि रूप,
समरसां	— समरस	विद्यां	— बिद्या रूप
शिवकथां	— शिव के विमर्शरूप,	आहुः	— इन इन अनन्त नामों से पुकारते हैं।
गुरुं	— गुरु रूप,		
पारम्पर्यं	— गुरु परम्परा रूप,		

प्रलीने शब्दौघे तदनु विरते बिन्दुविभवे
ततस्तत्त्वे चाष्टध्वनिभिरनुपाधिन्युपरते ।

श्रिते शाक्ते पर्वण्यनुकलितचिन्मात्र गहनां
स्वसंवित्तिं योगी रसयति शिवाख्यां परतनुम्।१८।

पदच्छेदः

प्रलीने शब्द ओघे तत् अनु विरते बिन्दुविभवे
ततः तत्त्वे च अष्टध्वनिभिः अनुपाधिनि उपरते।
श्रिते शाक्ते पर्वणि अनुकलित चिन्मात्र गहनां
स्वसंवित्तिं योगी रसयति शिव आख्यां परतनुम् ॥१८॥

शब्दओघे	— शब्द स्पर्श इत्यादि समूह के	श्रिते	— आश्रय लेने पर
प्रलीने	— लय हो जाने पर,	योगी	— उत्तम योगी पुरुष
तत् अनु	— इसके पश्चात्	शिवाख्यां	— शिव ही नाम वाली
बिन्दुविभवे	— ज्ञानों के ऐश्वर्य के	परतनुं	— उत्कृष्ट स्वरूप
विरते	— हट जाने पर,	अनुकलित-	— भली प्रकार विमर्श से पहचानी हुई
ततः च	— इसके बाद	चिन्मात्रगहनां	— अति सूक्ष्म और चैतन्य रूप
अष्टध्वनिभिः	— आठ वर्गों की[1]	स्वसंवित्तिं	— अपनी संवित् [अहन्ता] का
अनुपाधिनि	— उपाधि रहित	रसयति	— चमत्कार लेता है। [चिदानन्दमय बन जाता है।]
तत्त्वे	— तत्त्व के		
उपरते	— शांत हो जाने पर		
शाक्तेपर्वणि	— शक्ति की अवस्था का		

परानन्दाकारां निरवधिशिवैश्वर्यवपुषं
निराकारज्ञान प्रकृतिमनवच्छिन्नकरुणाम्।

१. आठवर्ग— अ—अः, कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग, य—व, श—ह

सवित्रीं भूतानां निरतिशयधामास्पदपदां
भवो वा मोक्षो वा भवतु भवतीमेवभजताम् ।१६।

पदच्छेदः

परानन्द आकारां निरवधि शिव ऐश्वर्य वपुषं
निराकार ज्ञान प्रकृति अनवच्छिन्न करुणाम् ।
सवित्रींभूतानां निरतिशयधाम आस्पद पदां
भवः वा मोक्षः वा भवतु भवतीम् एव भजताम् ।।१९।।

परानन्द-	— परमानन्द [आनन्द-शक्ति]		[सृष्टि शक्ति,इच्छा]
आकारां	— स्वरूप	निरतिशय-	— सब से उत्कृष्ट
निरवधि-	— असीम तथा अनन्त	धाम-	— अवस्था [परमशिव] का
शिवऐश्वर्य-	— शिव की ऐश्वर्यशक्ति [क्रिया शक्ति] के	आस्पदपदां	— आश्रय बनी हुई
		भवतीम् एव	— केवल आप ही का
वपुषं	— स्वरूप	भजतां	— विमर्श करने वालों को
निराकारज्ञान-	— अति सूक्ष्म ज्ञान शक्ति के	भवो वा	— चाहे संसार ही [हो]
प्रकृतिम्	— स्वभाव वाली,	मोक्षो वा	— या चाहे मुक्ति ही
अनवच्छिन्न-	— अपार	भवतु	— हो [उनके लिए संसार और निःसंसार भाव दोनों एक समान हैं]
करुणाम्	— अनुग्रह रूप,		
भूतानां	— सभी जड चेतन पदार्थों की		
सवित्रीं	— उत्पन्न करने वाली		

जगत्काये कृत्वा तमपि हृदये तच्च पुरुषे
पुमांसं बिन्दुस्थं तमपि परनादाख्यगहने ।

तदेतज्ज्ञानाख्ये तदपि परमानन्दविभवे
महाव्योमाकारे ! त्वदनुभवशीलो विजयते ॥२०॥

पदच्छेदः

जगत् काये कृत्वा तं अपि हृदये तत् च पुरुषे
पुमांसं बिन्दुस्थं तं अपि पर नादआख्य गहने ।
तत् एतत् ज्ञान आख्ये तत् अपि परमानन्द विभवे
महाव्योम आकारे ! त्वत् अनुभव शील: बिजयते ॥२०॥

जगत्	— जगत् को		रूप (सदाशिव तत्त्व) में,
काये	— अपने शरीर में	तत् अपि	— उस सदाशिव अवस्था को भी
कृत्वा	— [विमर्श से लय] करके,	परमानंदविभवे	— परमानंद रूप ऐश्वर्य में (ऊपर से नीचे तक एक दूसरे में क्रमश: लय करते हुए
तं अपि	— उस शरीर को भी		
हृदये	— हृदय [संवित्] में,		
तत् च	— उस हृदय को भी		
पुरुषे	— पुरुष [जीवात्मा] में,		
तं	— उस		
बिन्दुस्थं	— बिन्दु [ज्ञान] में ठहरे हुए	महाव्योमाकारे !	हे चिदाकाश रूप देवी !
पुमांसं अपि	— पुरुष को भी	त्वत् अनुभवशील:	आपके अनुभव (विमर्श) स्वभाव वाला योगी
परनादाख्य-	— परनाद नाम वाले [ईश्वर तत्त्व]		
गहने	— घने स्वरूप में,	विजयते	— सबसे उत्कृष्ट (परमशिव) अवस्था को प्राप्त होता है ।
तत् एतत्	— उस पर नाद को भी		
ज्ञान आख्ये	— ज्ञान नाम वाले स्व-		

विधे विद्ये वेद्ये विविधसमये वेदजननि !
विचित्रे विश्वाद्ये विनयसुलभे वेदगुलिके ।

शिवाज्ञे शीलस्थे शिवपदवदान्ये शिवनिधे
शिवे मातर्मह्यं त्वयि वितर भक्तिं निरुपमाम्।२१।

पदच्छेदः

विधे विद्ये वेद्ये बिविधसमये वेदजननि !
विचित्रे विश्वाद्ये विनयसुलभे वेदगुलिके ।
शिवाज्ञे शीलस्थे शिवपदवदान्ये शिवनिधे
शिवे मातः मह्यं त्वयि वितरभक्तिं निरुपमाम् ॥२१॥

विधे !	— हे विधिरूप,
विद्ये !	— हे सभीविद्याओं के रूप
वेद्ये !	— [1]हे वेदों के रूप में व्यापिनी, [2]हे जानने योग्य,
विविधसमये !	—हे नाना सिद्धान्तों के रूप,
वेदजननि !	— हे वेदों की माता,
विचित्रे !	— हे नानाता रूपों वा-वाली [भेदमयी]
विश्व आद्ये !	— हे सभी जगत् के आद्य रूप,
विनयसुलभे !	— हे भक्ति से सुप्राप्य!
वेदगुलिके !	— हे वेदों की सार रूप,
शिव आज्ञे !	— हे शिव की आज्ञा [स्वतन्त्र इच्छा]
शीलस्थे !	— हे चित् स्वभाव में अटल स्थिति वाली,
शिवपदवदान्ये !	हे शिव के साथ ऐ-क्य दिलाने वाली,
शिवनिधे !	— हे शिव की साररूप हे कल्याण भरी अनु-ग्रहशक्ति
मातः !	— हे माता
मह्यं	— मुझे
शिवेत्वयि	— तुझ में ही [जो शिव से अभिन्न है
निरुपमाम्	— जिसकी कोई उप-मा नहीं ऐसी
भक्तिं	— भक्ति [प्रेम]
बितर	— दे ।

विधेर्मुण्डं हृत्वा यदकुरुत पात्रं करतले
हरिं शूलप्रोतं यदगमयदंसाभरणताम् ।

अलंचक्रे कण्ठं यदपि गरलेनाम्ब गिरिशः
शिवस्थायाः शक्तेस्तदिदमखिलं ते विलसितम् ॥२२॥

पदच्छेदः

विधेः मुण्डं हृत्वा यत् अकुरुत पात्रं करतले
हरिं शूलप्रोतं यत् अगमयत् अंस आभरणताम् ।
अलं चक्रे कण्ठं यत् अपि गरलेन अम्ब ! गिरिशः
शिवस्थायाः शक्तेः तत् इदम् अखिलं ते विलसितम् ।२२।

अम्ब !	— हे माता,
गिरिशः	— शङ्कर ने
यत्	— जो
विधेः	— ब्रह्मा जी का
मुण्डं	— सिर
हृत्वा	— काट कर
करतले	— [उसे] हाथ में
पात्रं	— [भिक्षा] पात्र
अकुरुत	— बनाया,
यत्	— जो
हरिं	— विष्णु को
शूलप्रोतं	— त्रिशूल में पिरोकर
अंस-	— [अपने] कंधे के
आभरणतां	— भूषण भाव को
अगमयत्	— पहुँचाया (उसे कंधे पर उठाया)
यत् अपि	— और जो
कंठं	— अपने गले को
गरलेन	— हलाहल विष से
अलंचक्रे	— शोभायमान बनाया [विषको पी लिया]
तत् इदं अखिलं	— तो वह सब
ते	— तुझ
शिवस्थायाः	— शिव के साथ अभिन्न भाव से ठहरी हुई
शक्तेः	— शक्ति का ही
विलसितम्	— विकास है ।

विरिञ्च्याख्या मातः ! सृजसि हरिसंज्ञा त्वमवसि
त्रिलोकीं रुद्राख्या हरसि विदधासीश्वरदशाम् ।

भवन्ती सादाख्या शिवयसि च पाशौघदलिनी
त्वमेवैकाऽनेका भवसि कृतभेदैर्गिरिसुते ! ॥२३॥

पदच्छेदः

विरिञ्चि आख्या मातः सृजसि हरिसंज्ञा त्वम् अवसि
त्रिलोकीं रुद्रआख्या हरसि विदधासि ईश्वर दशाम् ।
भवन्ती सादाख्या शिवयसि च पाशओघ दलिनी
त्वं एव एका अनेका भवसि कृतभेदैः गिरिसुते ! ॥२३॥

गिरिसुते !	— हे पार्वती !	विदधासि	— धारण करती हो,
मातः !	— हे माता,	सादाख्या	— सदाशिव नाम वाली
त्वं	— तुम	भवन्ती	— बनकर
विरिञ्चि-	— ब्रह्मा	पाशौघ-	— बन्धनों के समूहों को
आख्या	— नाम वाली [शक्ति के रूप से]	दलिनी	— काटने वाली [बन कर]
त्रिलोकीं	— तीनों लोकों की	शिवयसि	— आनन्दमय भी बनाती हो,
सृजसि	— सृष्टि करती हो,		
हरिसंज्ञा	— विष्णु नाम वाली [बनकर]	त्वं	— तुम
अवसि	— पालन [स्थिति] करती हो,	एका एव	— एक ही [अभेदमय] होकर भी
रुद्राख्या	— रुद्र नाम वाली [बन कर]	कृतभेदैः	— स्वतंत्रता से उत्पन्न किए हुए भेदों से
हरसि	— विश्व का संहार करती हो,	अनेका	— अनन्त [भेदमय] रूपों वाली
ईश्वरदशां	— ईश्वर दशा को भी	भवसि	— बनती हो ।

मुनीनां चेतोभिः प्रमृदितकषायैरपि मना-
गऽशक्ये संस्प्रष्टुं चकितचकितैरम्ब ! सततम् ।
श्रुतीनां मूर्धानः प्रकृतिकठिनाः कोमलतरे
कथं ते विन्दन्ते पदकिसलये पार्वति! पदम् ॥२४॥

पदच्छेदः

मुनीनां चेतोभिः प्रमृदितकषायैः अपि मनाक्
अशक्ये संस्प्रष्टुं चकित चकितैः अम्ब ! सततम् ।
श्रुतीनां मूर्धानः प्रकृति कठिनाः कोमलतरे
कथं ते विन्दन्ते पदकिसलये पार्वति ! पदम् ॥२४॥

अम्ब !	— हे माता,
प्रमृदित्-	— पूर्णतया हटाये हुए
कषायैः	— राग वाले [जिन मुनियों के चित्त से रागद्वेषादि दूर हो चुके हैं]
चकितचकितैः	— अत्यन्त भयभीत
मुनीनां	— मुनियों की
चेतोभिः	— बुद्धियों से
अपि	— भी
सतत	— नित्य
मनाक्	— अंशमात्र भी
संस्प्रष्टुं	— स्पर्श करने के लिए [जानने के लिए]
अशक्ये !	— अशक्य [मुनि भी तुम्हें जान नहीं सकते]
पार्वति !	— हे पार्वती,
श्रुतीनां	— वेदों के
मूर्धानः	— सिर बने हुए [उपनिषद्]
प्रकृतिकठिनाः	— जो स्वभाव से ही कठिन हैं
ते	— तुम्हारे
कोमलतरे	— अतिकोमल
पदकिसलये	— चरणकमलों में
कथं	— किस प्रकार
पदं	— स्थान
विन्दन्ते	— पा सकते हैं ।

तडिद्वल्लीं नित्याममृत सरितं पाररहितां
मलोत्तीर्णां ज्योत्स्नां प्रकृतिमगुणग्रन्थिगहनाम् ।
गिरां दूरां विद्यामऽविनतकुचां विश्वजननी-
मपर्यन्तां लक्ष्मीमभिदधति सन्तो भगवतीम् ॥ २५ ॥

पदच्छेदः

तडित् वल्लीं नित्यां अमृत सरितं पाररहितां
मल उत्तीर्णां ज्योत्स्नां प्रकृतिं अगुणग्रन्थिगहनाम् ।
गिरां दूरां विद्यां अविनत कुचां विश्व जननीं
अपर्यन्तां लक्ष्मीं अभिदधति सन्तः भगवतीम् ॥२५॥

सन्तः	— भले पुरुष (परमार्थ के जानने वाले)	प्रकृतिं	— प्रकृति (जो गुणों सहित है),
भगवतीं	— देवी को	गिरां दूरां	-- वाणियों से परे (परन्तु)
तडित् वल्लीं	— विद्युत (बिजली) की लता	विद्यां	— सभी ज्ञानरूप [जो सभी वाणीमय हैं,]
नित्यां	— (परन्तु) अचल,		
पाररहितां	— जिसका कोई पार नहीं ऐसी	अविनत-	— न झुके हुए
		कुचां	— ज्ञान क्रियारूप स्तनों वाली (होते हुए भी)
अमृतसरितं	— चिदमृत की नदी,		
ज्योत्स्नां	— चांदनी (परन्तु)		
मलउत्तीर्णां	— मलों रहित	विश्वजननीं	— जगत् की माता
अगुणग्रंथि	— गुणों की ग्रंथियों रहित	अपर्यन्तां	— सीमा रहित
		लक्ष्मीं	— लक्ष्मी इन इन अनेक नामों से
गहनाम्	— अगम (अति सूक्ष्म तथा रहस्य) माया जो त्रिगुणमयी है	अभिदधति	— पुकारते हैं ।

शरीरं क्षित्यम्भः प्रभृतिरचितं केवलमिदं
सुखं दुःखं चायं कलयति पुमांश्चेतन इति।
स्फुटं जानानोऽपि प्रभवति न देही रहयितुं
शरीराहंकारं तव समयबाह्यो गिरिसुते ! ॥२६॥

पदच्छेदः

शरीरं क्षिति अम्भः प्रभृतिरचितं केवलं इदम्
सुखं दुःखं च अयं कलयति पुमान् चेतनः इति ।
स्फुटं जानानः अपि प्रभवति न देही रहयितुं
शरीर अहङ्कारं तव समयबाह्यः गिरिसुते ! ॥२६॥

गिरिसुते !	— हे पार्वती,	इति	— ही
अयं	— यह	कलयति	— जानता है,
चेतनः	— चेतन	तव	— तुम्हारे
पुमान्	— पुरुष	समयबाह्यः	— सिद्धान्त को न जानने वाला
इदं	— इस		
केवलं	— केवल	स्फुटं	— भली प्रकार
क्षिति-	— पृथिवी,	जानानः अपि	— जानता हुआ भी
अम्भः-	— जल,	देही	— शरीर धारी (देहाभिमानी)
प्रभृति	— आदि पंच महाभूत का	शरीर अहंकारं	— देहाभिमान को
रचितं	— बना हुआ,	रहयितुं	— छोडने में
शरीरं	— शरीर को	न प्रभवति	— समर्थ नहीं बनता है।
सुखं दुःखं च	— और सुख दुःख को		

पिता माता भ्राता सुहृदऽनुचरः सद्म गृहिणी
वपुः पुत्रो मित्रं धनमपि यदा मां विजहति।

तदा मे भिन्दाना सपदि भयमोहान्धतमसं
महाज्योत्स्ने मातर्भव करुणया सन्निधिकरी ।२७।

पदच्छेदः

पिता माता भ्राता सुहृत् अनुचरः सद्म गृहिणी
वपुः पुत्रो मित्रं धनं अपि यदा मां विजहति ।
तदा मे भिन्दाना सपदि भय मोह अन्ध तमसं
महाज्योत्स्ने मातः ! भव करुणया सन्निधिकरी ।।२७।।

महाज्योत्स्ने!	— हे महाप्रकाशमयी
मातः	— जगत् को उत्पन्न तथा पालन करने वाली मां,
पिता	— पिता,
माता	— मां,
भ्राता	— भाई,
सुहृद्	— अत्यन्त प्रेमी,
अनुचरः	— नौकर,
सद्म	— घर,
गृहिणी	— पत्नी,
वपुः	— शरीर,
पुत्रः	— पुत्र,
मित्रं	— मित्र,
धनं अपि	*— और धन भी*
यदा	*— जिस समय (मरण* काल पर)
मां	— मुझे
विजहति	— छोड दें,
तदा	— तो उस समय
करुणया	— दया करके
मे	— मेरे
भयमोहान्ध-	— भय और मोहरूप
तमसं	— अन्धकार को
भिन्दाना	— नाश करती हुई
सपदि	— तुरन्त ही
सन्निधिकरी	— प्रत्यक्षरूप से प्रकट
भव	— हो जाइये । मुझे अपने साथ एकता करा दी-*जिये ।*

सुता दक्षस्यादौ किल सकलमातस्त्वमुदभूः
सदोषं तं हित्वा तदनु गिरिराजस्य तनया ।

अनाद्यन्ता शम्भोरपृथगपि शक्तिर्भगवती
विवाहाज्जायासीत्यहह चरितं वेत्ति तव कः ॥२८॥

पदच्छेदः

सुता दक्षस्य आदौ किल सकलमातः ! त्वं उदभूः
सदोषं तं हित्वा तत् अनु गिरिराजस्य तनया ।
अनाद्यन्ता शम्भोः अपृथक् अपि शक्तिः भगवती
विवाहात् जाया असि इति अहह चरितं वेत्ति तव कः ।२८।

सकल मातः !	— हे सब की मां,	भगवती	— ऐश्वर्यवती
त्वम्	— तुम	अपृथक् अपि शक्तिः	[शिव से] अभिन्न [उसकी]शक्ति होते हुए भी
आदौ	— पहिले		
किल	— निश्चय ही		
दक्षस्य	— दक्ष प्रजापति की	विवाहात्	— विवाह करके
सुता	— पुत्री [के रूप में]	शम्भोः	— शिव की
उदभूः	— उत्पन्न हुई,	जाया	— पत्नी
तत्अनु	— इसके बाद	असि	— बनी,
तं	— उस [दक्ष को]	अहह	— आश्चर्य है,
सदोषं	— दोष सहित को	तव	— तुम्हारे
हित्वा	— छोडकर	चरितं	— कर्तव्यों को
गिरिराजस्य	— हिमालय की	कः	— कौन
तनया	— बेटी [बनी],	वेत्ति ?	— जान सकता है । [कोई भी नहीं जान सकता]
अनाद्यन्ता	— आदि और अन्त रहित		

कणास्त्वद्दीप्तीनां रविशशिकृशानुप्रभृतयः
परं ब्रह्म क्षुद्रं तव नियतमानन्दकणिका ।

शिवादिक्षित्यन्तं त्रिवलयतनोः सर्वमुदरे
तवास्ते भक्तस्य स्फुरसि हृदि चित्रं भगवति ।२६।

पदच्छेदः

कणाः त्वत् दीप्तीनां रविशशि कृशानु प्रभृतयः
परं ब्रह्म क्षुद्रं तव नियतं आनन्द कणिका ।
शिवआदि क्षिति अन्तं त्रिवलयतनोः सर्वं उदरे
तव आस्ते भक्तस्य स्फुरसि हृदि चित्रं भगवति ! ॥२९॥

रवि-	— सूर्य,	शिवादि-	— शिव से
शशि-	— चन्द्रमा,	क्षित्यन्तं	— पृथिवी तक
कृशानु-	— अग्नि,	सर्वं	— सारा विश्व
प्रभृतयः	— इत्यादि [सभी तेज वाले]	त्रिवलयतनोः	— तीन लपेट वाले [प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय स्वरूप]
त्वत्-	— तुम्हारी		
दीप्तीनां	— अनन्त दीप्तियों के [तेजों के]	तव	— तुम्हारे
		उदरे	— स्वरूप में
कणाः	— अत्यंत छोटे अंश हैं,	आस्ते	— ठहरा हुआ है ।
क्षुद्रं	— अति तुच्छ [तुम्हारे अपार स्वरूप के मुकाबले में]	भगवति !	— हे भगवती,
		भक्तस्य	— भक्त के
		हृदि	— हृदय में
परं ब्रह्म	— परं ब्रह्म भी	स्फुरसि	— तुम विकसित होती हो,
…यतं	— निश्चय ही		
	— तुम्हारे	चित्रम्[1]	— यह आश्चर्य की बात है ।
…कणिका	— आनन्द का एक कण है,		

…हृदय की इतनी विशालता है कि देवी का अपार स्वरूप जिसके …
… चन्द्रमा, आदि तुच्छ हैं, उस हृदय में समा जाता है

त्वया यो जानीते रचयति भवत्यैव सततं
त्वयैवेच्छत्यम्ब ! त्वमसि निखिला यस्य तनवः ।
गतः साम्यं शम्भुर्वहति परमं व्योम भवती
तथाप्येवं हित्वा विहरति शिवस्येति किमिदम् ।३०।

पदच्छेदः

त्वया यो जानीते रचयति भवत्या एव सततं
त्वया एव इच्छति अम्ब ! त्वं असि निखिलाः यस्य तनवः ।
गतः साम्यं शम्भुः वहति परमं व्योम भवती
तथा अपि एवं हित्वा विहरति शिवस्य इति किं इदम् ।३०।

अम्ब !	— हे माता !	असि	— हो,
यः	— जो [शिव]	शम्भुः	— शिव
त्वया	— तुम्हारे ही स्वरूप से [ज्ञान शक्ति से]	साम्यं गतः	— समभाव को पहुँच कर
जानीते	— जानता है [ज्ञान शक्ति]	परमं व्योम	— उत्कृष्ट चिदाकाश को
भवत्या एव	— तुम्हारे ही स्वरूप से	वहति	— धारण करता है,
रचयति	— सृष्टि करता है[क्रियाशक्ति]	एवं	— इस प्रकार के स्थूल सूक्ष्म स्वभाव को
सततं	— नित्य	हित्वा	— छोड कर
त्वया एव	— तुम्हारे ही स्वरूप से	भवती	— आप
इच्छति	— इच्छा करता है, [इच्छा शक्ति]	शिवस्य	— शिव के[चिदाक स्वभाव से
यस्य	— जिसके	विहरति	— क्रीडा कर
निखिलाः	— सभी	इति	
तनवः	— स्वरूप	किं इदम्	— यह कै की
त्वम्	— तुम ही		

पुरः पश्चादन्तर्बहिरपरिमेयं परिमितं
परं स्थूलं सूक्ष्मं सकुलमकुलं गुह्यमगुहम् ।
दवीयो नेदीयः सदसदिति विश्वं भगवतीं
सदा पश्यन्त्याज्ञां वहसि भुवनक्षोभ जननीम् ।३१।।

पदच्छेदः

पुरः पश्चात् अन्तर् बहिः अपरिमेयं परिमितम्
परं स्थूलं सूक्ष्मं सकुलं अकुलं गुह्यं अगुहम् ।
दवीयः नेदीयः सत् असत् इति विश्वं भगवतीम्
सदा पश्यन्ति आज्ञां वहसि भुवन क्षोभजननीम् ।।३१।।

पुरः	— प्रत्यक्ष [जाना हुआ]	नेदीयः	— अति प्रकट [अपने साथ ही रहने वाला]
पश्चात्	— परोक्ष, [न जाना हुआ]		
अन्तर्	— अन्तःकरणों का विषय,	सत्-	— सत्ता रूप
		असत्	— अभाव [शून्य] रूप
बहिः	— बहिष्करणों का विषय,	इति	— इन इन भिन्न भिन्न रूपों से
अपरिमेयं	— अनन्त,	विश्वं	— सारे जगत् को
परिमितं	— छोटा, [संकुचित्]	भगवतीं	— आपका ही स्वरूप
परं	— उत्कृष्ट,	सदा	— नित्य
स्थूलं	— स्थूल,	पश्यन्ति	— [भक्तजन] देखते हैं
सूक्ष्मं	— सूक्ष्म,	भुवन-	— सारे विश्व को
सकुलं	— विश्वमय,	क्षोभजननीं	— क्षोभ उत्पन्न कराने वाले [भेदमय बनाने वाले]
अकुलं	— विश्वोत्तीर्ण,		
गुह्यं	— छिपाने योग्य,		
अगुहं	— प्रकट	आज्ञां	— स्वभाव को

दवीयो	— बहुत ही दूर [अपने से भिन्न]	वहसि	— धारण करती हो।

मयूरवाः पूष्णीव ज्वलन इव तद्दीप्तिकणिकाः
पयोधौ कल्लोलप्रतिहतमहिम्नीव पृषतः।
उदेत्योदेत्याम्ब त्वयि सह निजैस्तात्त्विककुलै-
र्भजन्ते तत्त्वौघाः प्रशममनुकल्पं परवशाः ॥३२॥

पदच्छेदः

मयूरवाः पूष्णि इव ज्वलने इव तत् दीप्तिकणिकाः
पयोधौ कल्लोल प्रतिहतमहिम्नि इव पृषतः।
उदेत्य उदेत्य अम्ब ! त्वयि सह निजैः तात्त्विककुलैः
भजन्ते तत्त्व ओघाः प्रशमम् अनुकल्पं परवशाः ॥३२॥

अम्ब !	— हे माता,	तत्त्वओघाः	— तत्त्वों के समूह
मयूरवाः	— किरणें	उदेत्य उदेत्य	— बार बार उदय करके
पूष्णि	— सूर्य में		
इव	— जैसे,	निजैः	— अपनें अपने
ज्वलनेइव	— अग्नि में जैसे	तात्त्विक-	— तेजोमय
तद्दीप्तिकणिका	उसी अग्नि के कण	कुलैः सह	— समूहों के साथ
पयोधौ	— सागर में	परवशाः	— बेबस होकर
कल्लोल-	— तरंगों द्वारा	त्वयि	— तुम्हारे ही स्वरूप में
प्रतिहत-	— छिपाये हुए	अनुकल्पं	— दृढ़ प्रकार से
महिम्न	— महिमा वाले [सागर में]	प्रशमं	— शान्ति को
		भजन्ते	— प्राप्त करते हैं [तुम में ही लय हो जाते हैं।
पृषतः इव	— छींटें जैसे [निकल कर उसी में लय हो जाते हैं वैसे ही]		

विधुर्विष्णुर्ब्रह्माप्रकृतिरणुरात्मादिनकरः
स्वभावो जैनेन्द्रः सुगतमुनिराकाशमनिलः ।
शिवः शक्तिश्चेति श्रुतिविषयतां तामुपगतां
विकल्पैरेभिस्त्वामऽभिदधति सन्तो भगवतीम् ।३३।

पदच्छेदः

विधुः विष्णुः ब्रह्मा प्रकृतिः अणुः आत्मा दिनकरः
स्वभावः जैनेन्द्रः सुगतमुनिः आकाशं अनिलः ।
शिवः शक्तिः च इति श्रुतिविषयतां तां उपगतां
विकल्पैः एभिः त्वां अभिदधति सन्तः भगवतीम् ॥३३॥

विधुः	— चन्द्रमा, [आनन्द शक्ति]	अनिलः	— वायु,
विष्णुः	— विष्णु, [व्यापक]	शिवः	— शिव,
ब्रह्मा	— ब्रह्मा,	शक्तिश्चइति	— और शक्ति
प्रकृतिः	— प्रकृतितत्त्व,	एभिः	— इन इन [भिन्न भिन्न]
अणुः	— जीव,	विकल्पैः	— विकल्पों [नामों] से
आत्मा	— चित् शक्ति,	त्वां	— तुझ
दिनकरः	— सूर्य,	भगवतीं	— भगवती को
स्वभावः	— स्वभाव,	तां	— उस
जैनेन्द्रः	— महावीर स्वामी,	श्रुतिविषयतां	— सुनने का विषय
सुगतमुनिः	— बुद्धभगवान,	उपगतां	— बनी हुई को
आकाशं	— आकाश,	सन्तः	— श्रेष्ट पुरुष
		अभिदधति	— पुकारते हैं।

प्रविश्य स्वं मार्गं सहजदयया देशिकदृशा
षडध्वध्वान्तौघच्छिदुरगणनातीतकरुणाम् ।

परानन्दाकारां सपदि शिवयन्तीमपि तनुं
स्वमात्मानं धन्याश्चिरमुपलभन्ते भगवतीम् ।३४।

पदच्छेदः

प्रविश्य स्वं मार्गं सहजदयया दैशिकदृशा
षट् अध्वध्वान्त ओघच्छिदुरगणनातीतकरुणाम् ।
परानन्द आकारां सपदि शिवयन्तीम् अपि तनुं
स्वम् आत्मानं धन्याः चिरम् उपलभन्ते भगवतीम् ।।३४।।

धन्याः	— भाग्यवान पुरुष
सहजदयया	— आपकी स्वाभाविक दया से
दैशिकदृशा	— [तथा] उत्तम गुरु-जनों के अनुग्रह से
स्वंमार्गं	— अपने [सुषुम्ना] मार्ग में
प्रविश्य	— प्रवेश करके
षट्अध्व-	— छः मार्ग रूप
ध्वान्तौघ-	— अन्धकार [अज्ञान] के समूह के
च्छिदुर-	— काटने के लिए
गणनातीत-	— पर्यन्त रहित
करुणाम्	— दया रूप [देवी को]
परानन्दाकारां	– परमानन्द रूप
तनुं अपि	— शरीर को भी
शिवयन्तीम्	— कल्याणमय बनाती हुई
भगवतीं	— भगवती को
स्वं आत्मानं	— अपना ही स्वरूप
सपदि	— झटपट [निरायास]
चिरं	— अनन्तकाल तक
उपलभन्ते	— जानते हैं ।

शिवस्त्वं शक्तिस्त्वं त्वमसि समया त्वं समयिनी
त्वमात्मा त्वं दीक्षा त्वमयमणिमादिर्गुणगणः।
अविद्या त्वं विद्या त्वमसि निखिलं त्वं किमपरं
पृथक्तत्त्वं त्वत्तो भगवति न वीक्षामह इमे ।।३५।।

पदच्छेद:

शिव: त्वं शक्ति: त्वं त्वं असि समया त्वं समयिनी
त्वं आत्मा त्वं दीक्षा त्वं अयं अणिमा आदि: गुणगण: ।
अविद्या त्वं विद्या त्वं असि निखिलं त्वं किं अपरम्
पृथक् तत्त्वं त्वत्तो भगवति ! न वीक्षामहे इमे ॥३५॥

भगवति !	— हे भगवती,
त्वम्	— तुम ही
शिव:	— शिवरूप हो,
त्वं	— तुम ही
शक्ति:	— शक्तिरूप हो,
त्वं	— तुम ही
समया असि	— सिद्धान्त रूप हो,
त्वं	— तुम ही
समयिनी	— सिद्धान्त कर्त्री हो,
त्वम्	— तुम ही
आत्मा	— आत्मा हो,
त्वम्	— तुम ही
दीक्षा	— उपदेशरूप भी हो
त्वम्	— तुम ही
अयं	— यह
अणिमादि:	— अणिमादि सिद्धियां हो
गुणगण:	— (तुम ही) गुणों का समूह हो, (सत्त्व, रज तम)
त्वं	— तुम ही
अविद्या	— अज्ञानरूप भी हो,
त्वम्	— तुम ही
विद्या	— ज्ञानरूप हो,
निखलं	— सभी कुछ
त्वं असि	— तुम ही हो,
किं अपरं	— कौनसा दूसरा
तत्त्वं	— ऐसा तत्त्व
त्वत्तो	— तुम से
पृथक्	— भिन्न है
इमे (वयं)	— ऐसे हम
न वीक्षामहे	— इस बात को नहीं जानते हैं।

असंख्यैः प्राचीनैर्जननि, जननैःकर्मविलया-
द्रुते जन्मन्यन्तं, गुरुवपुषमासाद्य गिरिशम्।
अवाप्याज्ञां, शैवीं, क्रमतनुरपि त्वां विदितवा-
न्नयेयं त्वत्पूजास्तुतिविरचनेनैव दिवसान् ॥३६॥

पदच्छेदः

असंख्यैः प्राचीनैः जननि ! जननैः कर्म विलयात्
गते जन्मनि अन्तं गुरुवपुषं आसाद्य गिरिशम् ।
अवाप्य आज्ञां शैवीं क्रमतनुः अपि त्वां विदितवान्
नयेयं त्वत्पूजास्तुति विरचनेन एव दिवसान् ॥३६॥

जननि !	— हे माता,
प्राचीनैः	— पिछले
असंख्यैः	— जो गिने नहीं जा सकते इतने
जननैः	— जन्मों द्वारा
कर्मविलयात्	— कर्मों के नष्ट होने से
जन्मनि	— जन्मों के
अन्तंगते	— अन्त होने पर (जीवन्मुक्त दशा प्राप्त करके भी)
गुरुवपुषम्	— गुरुवर के स्वरूप
गिरिशम्	— शिव को
आसाद्य	— प्राप्त करके (साक्षात्कार करके)
शैवीं	— शिवरूप
आज्ञां	— सिद्धान्त को (अद्वैत चैतन्य मार्ग)
अवाप्य	— पाकर [उसका] मनन तथा निधिध्यासन करके]
क्रमतनुः अपि	— सक्रम [मनुष्य] शरीर धारण करता हुआ भी
त्वां	— तुझ को
विदितवान्	— जानता रहूं (और)
त्वत्-	— तुम्हारी
पूजास्तुति-	— पूजा तथा स्तुति इत्यादि के
विरचनेन एव	— बनाने और करने में ही
दिवसान्	— इस जन्म के शेष दिन
नयेयम्	— व्यतीत करूं । (यही मेरी प्रार्थना है)

यत्षट्पत्रं कमलमुदितं तस्य या कर्णिकाख्या
योनिस्तस्याः प्रथितमुदरे यत्तदोङ्कारपीठम् ।

तस्मिन्नऽन्तः कुचभरनतां कुण्डलीतः प्रवृत्तां
श्यामाकारां सकलजननीं सन्ततं भावयामि ।३७।

पदच्छेदः

यत् षट्पत्रं कमलं उदितं तस्य या कर्णिका आख्या
योनिः तस्याः प्रथित उदरे यत् तत् ओंकार पीठम् ।
तस्मिन् अन्तः कुचभरनतां कुण्डलीतः प्रवृत्तां
श्याम आकारां सकलजननीं सन्ततं भावयामि ॥३७॥

यत्	— जो
षट्पत्र	— छः पत्तों वाला
कमल	— कमल
उदित	— खिला हुआ
तस्य	— उस कमल की
या	— जो
कर्णिकाख्या	— कर्णिका नाम वाली
योनिः	— योनि [मध्य] है
तस्याः	— उस [योनि] के
उदरे	— बीच में
यत् तत्	— जो वह [अलौकिक]
ओंकारपीठं	— ओंकार रूप पीठ
प्रथितं	— प्रकट है
तस्मिन् अन्तः	— उस ओंकार पीठ के अन्दर
कुचभरनतां	— [ज्ञान क्रिया रूप] स्तनों के बोझ से झुकी हुई
कुण्डलीतः	— कुण्डलिनी रूप से
प्रवृत्तां	— प्रवृत्त हुई
श्यामाकारां	— श्याम वर्ण
सकलजननीं	— सबको उत्पन्न तथा पालन करने वाली देवी को
सन्ततं	— बारम्बार
भावयामि	— मैं भावना करता हूं।

भुवि पयसि कृशानौ मारुते खे शशाङ्के
सवितरि यजमानेऽप्यष्टधा शक्तिरेका ।

वहति कुचभराभ्यां या विनम्रापि विश्वं
सकलजननि सा त्वं पाहिमामित्यवश्यम् ॥३८॥

पदच्छेदः

भुवि पयसि कृशानौ मारुते खे शशाङ्के
सवितरि यजमाने अपि अष्टधा शक्तिः एका ।
वहति कुचभराभ्यां या विनम्रा अपि विश्वं
सकलजननि ! सा त्वं पाहि मां इति अवश्यम् ॥३८॥

सकलजननि ! — हे जगत को उत्पन्न करने वाली मां,
या — जो [तुम]
एका अपि — एक रूप होते हुए भी
भुवि — पृथिवी में,
पयसि — जल में,
कृशानौ — अग्नि में,
मारुते — वायु में,
खे — आकाश में,
शशाङ्के — चन्द्रमा [प्रमेय] में,
सवितरि — सूर्य [प्रमाण] में,
यजमाने — यज्ञ करने वाले [प्रमाता] में
अष्टधा — आठ प्रकार की
शक्तिः — शक्ति
कुचभराभ्यां — स्तनों के बोझ से
विनम्रा अपि — झुकी हुई भी
विश्वं — जगत् को
वहति — धारण करती है
सा त्वं — वही तुम
मां — मेरी
पाहि — रक्षा करो
इति अवश्यम् — यह अवश्य बात है।

इति श्री पञ्चस्तव्यां सकलजननीस्तवः पञ्चमः ॥

समाप्ता चेयं पञ्चस्तवी ॥

इति शिवम्

Printed at :-

The Fine Art Press 2nd Bridge,

Srinagar-Kashmir

میں دنیا کی شہرہ گرنتھوں کا ریڈ پرانت کرنا ہی پسند کرتا ہوں کیونکہ

میرا یہ ماننا ہے گرنتھوں کا رستہ ہی نہیں دنیا والی ... دیوتا

دیکھنے کا یہ ہی بہترین طریقہ ہے۔ میں دس منتر الوک کے ارتھ کو

کرتا ہے۔ جن میں شانتی ہے اس ترجمہ کرنا چاہتا ہوں کیونکہ

اس کو کرتا ہے اس کا اصل ارتھ سمجھ کر ... ترجمہ

کرنا چاہتا ہوں۔ جس اصل ارتھ کی دوسرے گرنتھ کاروں نے ورنن

کیا ہے یا جنہوں نے اس کے اصلی ارتھ کو نہ سمجھا ہے۔